Publishers :

NATH PUBLISHING HOUSE
Educational Publisher
Raja Mandi, AGRA.

Printed By :

P. C. AGARWAL
NAV JIVAN PRESS
Belanganj, AGRA.

दो शब्द

मुझे 'यशोधरा और राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त' नामक यह पुस्तक बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत करने में अत्याधिक हर्ष हो रहा है। आजकल विद्यार्थियों को परीक्षा के प्रश्न समझने और उनके उत्तर का उचित ढंग निश्चित करने में अधिक कठिनाई होती है और इसलिए वे विषय का ज्ञान रखते हुए भी बहुधा पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। इस पुस्तक का ध्येय विद्यार्थियों की इसी दशा में सहायता करना है।

प्रश्नों के उत्तरों को वैज्ञानिक व्याख्या की दृष्टि में शीर्षकों तथा उपशीर्षकों में बाँटा गया है। साथ ही विद्यार्थियों को महान साहित्यिक आलोचको के दृष्टि-कोणों से परिचित कराने के हेतु उचित स्थानों पर उनके मतों का स्वतन्त्रता पूर्वक उल्लेख भी किया गया है।

मैं इस पुस्तक में किसी प्रकार की मौलिकता का दावा नहीं करता, और साथ ही उन सब लेखकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ, जिनकी रचनाओं से मैंने इस पुस्तक को लिखने में सहायता ली है।

मैं अपने मित्र श्री विशालसिंह एम० ए० (फाइनल) आगरा कालेज, आगरा का अत्यन्त आभारी हूँ जो विद्यार्थियों के हित के लिए शीघ्र से शीघ्र इस पुस्तक को तैयार करने के लिए मुझे निरन्तर कोंचते-उकसाते रहे। अन्त में, मैं अपने मित्र और इस पुस्तक के प्रकाशक श्री शम्भूनाथ का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने एक भाई के आग्रह और प्रकाशक के संयम के द्वारा मुझ जैसे आलसी से से यह कार्य करा ही लिया।

यदि यह पुस्तक विद्यार्थियों को थोड़ा भी हित पहुँचा सकी, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

खुर्जा— लेखक—

विषय-सूची

प्रथम भाग

विषय | पृष्ठ

—: नव जीवन प्रेस, वेलनगंज आगरा, में मुद्रित :—

महत्वपूर्ण प्रश्न और व्याख्याएँ

प्रश्न १—श्री मैथिली शरण गुप्त की साहित्य-साधना का परिचय देते हुए सिद्ध कीजिए कि वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रति सिद्धि कवि है।

उत्तर—भारत की वीर-भूमि बुन्देलखण्ड के हृदय झांसी की कोख में बसे हुए चिरगांव की धूल से धूसित एक दशवर्षीय वालक अपने मन में अपनी संस्कृति, अपने देश की ममता को समेटे गुनगुना रहा था। उसके इस बालसुलभ खिलवाड़ को देखकर विरले ही ऐसे होंगे जिन्होंने कहा होगा—'होनहार विरवान के होत चीकने पात'। किन्तु ऐसे अनन्त सुगन्ध भरे पुष्प के फूलने-फलने में प्रकृति भी तो माँ बनकर सहायक हो जाती है। भगवत् प्रेमी पिता ने आरम्भ में ही शिशु की कोमल भाव-भूमि पर राम कथा की अमिट रेखाएँ खींच दीं और उन रेखाओं पर निर्मल भाव-प्रासाद खड़ा होने के लिए प्रस्तुत कर दिया साहित्य वातावरण। परिणाम स्वरूप वालक के हृदय में भावनाओं का लघुतरु निरन्तर विकसित होता रहा। सौभाग्य से ऐसे हीरे को महान् पारखी महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसा गुरु भी मिल गया और पिता तथा गुरु के चरणों की धूल को माथे पर लगाकर उनके मौन आशीर्वाद का सम्बल लेकर वह वालक साहित्य-साधना में डूब गया। वह वालक था मैथिली शरण गुप्त, जो आगे चलकर युग की प्रतिनिधि कवि बना और जो आज राष्ट्र कवि के पद पर आसीन हैं।

हिन्दी-काव्यक्षेत्र में जिस समय गुप्त जी ने प्रवेश किया, उस समय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली को हिन्दी कविता का माध्यम बनाने में भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु, उस समय का कवि अनिश्चित अवस्था में था, युग के करवट बदलने पर साहित्य में नई मोड़ आती ही है, किन्तु उसका मार्ग तत्क्षण निश्चित नहीं हो पाता। इसीलिए उस समय श्रीधर पाठक जैसे कवि, कभी ब्रज भाषा की ममता में फँस कर 'काश्मीर-सुषमा' की रचना करते थे तो कभी खड़ी बोली के आकर्षण से 'एकान्त वासी योगी' को लिखते थे। इसी समय

हरिऔध जी 'प्रियप्रवास' द्वारा हिन्दी में युगान्तर उपस्थित कर रहे थे, किन्तु उनकी भाषा जनता जनार्दन की न रहकर संस्कृत–निष्ठ विद्वान की भापा का अनुसरण कर रही थी, जबकि इस समय आवश्यकता थी ऐसे कवि की जो अपनी भावनाओं को जन भापा में व्यक्त करके जनता के कानों तक पहुँचा सके, यही द्विवेदी जी का खड़ी बोली के सम्बध में मधुर स्वप्न था। अस्तु, मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-बध' 'साकेत' आदि के द्वारा द्विवेदी जी के स्वप्न को साकार कर दिया, अतएव यदि हम उन्हें खड़ी बोली का प्रवर्तक कहें तो अनुचित नहीं होगा।

गुप्त जी के काव्य में जातीय, राष्ट्रीय, नैतिक और धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक चेतना मूर्त हो उठी है। उसमें युग जीवन को प्रेरित करके वाली सभी विचारधाराओं और परम्पराओं की अन्विति है। उसका काव्य सर्वांगीण और व्यापक रूप से आधुनिक युग का प्रतिनिधि सिद्ध होता है, इसलिए गुप्त जी आधुनिक युग के प्रतिनिधि भी कहे जाते हैं। उनमें काव्य की तीन प्रमुख विशेषताएं परिलक्षित होती हैं,–राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना और युग चेतना।

राष्ट्रीय-भावना ने उनके काव्य में सबसे पहले स्थान प्राप्त किया। देश भक्ति और अतीत के गौरव से कवि आरम्भ से ही अभिभूत है। 'भारत-भारती' तो राष्ट्रीय-चेतना भी साकार प्रतिमा है। उसमें एक ओर तो वर्तमान युग का आक्रोस, क्षोभ, प्रतिशोध और व्यथा की अभिव्यक्ति है, और दूसरी ओर सुन्दर भविष्य की आशाओं और मधुर स्वप्नों का वर्णन है। यदि हम इसे जातीय-चेतना कहें तो अन्याय नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें हिन्दू संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान और शौर्य की अनेक झाँकियाँ मिलती हैं। 'जयद्रथ-वध' 'साकेत' में भी कवि की देश-भक्ति प्रवाहित हो रही है। सत्यता यह है कि उनकी शायद ही कोई ऐसी कृति हो, जिसमें देशानुराग थोड़ा बहुत न झलकता हो।

गुप्त जी के जयद्रथ-वध, सैरन्ध्री, द्वापर, पंचवटी, साकेत, आदि पौराणिक आख्यान मूलक काव्यों में सांस्कृतिक चेतना के रूप चित्रित हैं। इन सबसे शील सौन्दर्य सज्जनता आदि रूढ़ वृतियों की विजय दिखाना कवि उदेश्य रहा है। पारवारिक जीवन की सरस झाँकियाँ भी इसमें मिलती हैं।

प्रत्येक कवि अतीत में प्रेरणा, वर्तमान में आकर्षण और भविष्य में कल्पना लेकर एक नवीन सृष्टि करता है! गुप्त जी भी इसके अपवाद नहीं उनके काव्यों

में युग जीवन-दर्पण की भांति झलकता है। वे गान्धीवाद से विशेषत: प्रभावित हैं। 'अनघ' में गांधी जी के सत्याग्रह का विस्तृत वर्णन है। 'सांकेत' में भी अपनी प्रतिभा से कवि ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन करके हमें उस युग की स्मृति दिलाई है। द्वापर निरंकुश और आततायी राजा के विरुद्ध विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति और सुधार की घोषणा भी ऐसे ही वर्णन हैं। यही नही कवि ने विभिन्न धर्मों के प्रति अपना राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखा है। जैसे 'काबा' 'कर्बला' में मुसलमान धर्म के प्रति, 'गुरकुल' में सिख धर्म के प्रति और 'यशोधरा' में बौद्ध धर्म के प्रति। इस युग का कवि रहस्यवाद की ओर उन्मुख हो रहा था! दार्शनिक गोपन अभिधा के नये चमत्कार के साथ सामने आ रहा था इस रूप को लेकर कवि 'झंकार' से प्रगट हुआ! आधुनिक गति का प्रयोग हमें 'कुणाल', 'यशोधरा' में मिलता है, इन कृतियों में कवि पर छायावाद का प्रभाव भी प्रकट है, इस प्रकार गुप्त जी की कृतियों में आधुनिक युग की सभी विशेषतायें समाहित हैं और कवि की विकाश शील प्रतिभा उनमें क्रमश: दिखाई पड़ती है! इस विकासशील प्रगति का सक्षेप में उल्लेख करना आवश्यक है।

प्रतिनिधि कवि में कालानुसरण की क्षमता एवं तत्कालीन साहित्यिक शैलियों के प्रयोग की शक्ति होती है। गुप्त जी में यह शक्तिपूर्णतया विद्यमान है। आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी प्रतिभा का उल्लेख करते हुए कहा है कि—

"गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करने की शक्ति।"

शुक्ल जी का यह निष्कर्ष गुप्त जी के कृतित्व का अवलोकन करने पर पूरी तरह सत्य सिद्ध होता है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं का—जो सरस्वती में दस वर्ष तक छपती रहीं—काव्यत्व की दृष्टि से तो विशेष महत्व नहीं है, किन्तु कवि की विकास-कड़ी को समझने के लिए उनका अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि द्विवेदी जी द्वारा प्रतिपादित भाषा का वे आदर्श नमूना है। तत्पश्चात् सन् १६१० में नवीन प्रतिभा को लेकर उनका प्रथम काव्य 'रंग भंग' तैयार हुआ। शैली और भाषा की दृष्टि से यह काव्य सरस है और कवि की वैष्णव वृत्ति का परिचय

भी हमें यहीं से प्राप्त होता है, उसकी यह आत्मा आगे के काव्यों में निरन्तर बढ़ती गई। कवि के स्वदेश-प्रेम का अंकुर भी यहीं से उगता है जो 'भारत-भारती' में जाकर पूरी तरह फला फूला। इस प्रकार 'रंग भंग' कवि की प्रगति-श्रृंखला की पहली कड़ी है। इसी वर्ष उनकी दूसरा रचना 'जयद्रथ-वध' भी प्रकाशित हुई। इसमें उपर्युक्त गुण और भी अधिकता से आगए, भावधारा भी इसमें अधिक वेगगामी है। सब मिलाकर इसे हम एक सफल खण्ड काव्य कह सकते हैं।

सन् १९१२ में जातीय-उत्थान का नवीन उद्घोष लेकर गुप्त जी की प्रसिद्ध रचना 'भारत-भारती' आई। यह कृति उस समय के वातावरण के लिए अत्याधिक उपयुक्त सिद्ध हुई। इसमें प्राचीन, मध्यकालीन और वर्तमान हिंदु-जाति की अवस्थाओं का उल्लेख करके आधुनिक हिन्दू-समाज को अचेत होने की प्रेरणा प्रदान की, भविष्य के संकटों का सूक्ष्म संकेत और उनसे बचने के लिए सावधान भी किया पर उस में काव्यात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा प्लेटफार्म पर खड़े होकर दिए गए से व्याख्यानो का ही बाहुल्य है। फिर भी उस वातावरण में इसका बड़ा नाम हुआ।

'भारत-भारती के अतिरिक्त १९१२ से सन् १९२३ तक पद्य-प्रबन्ध, तिलोत्तमा, चन्द्रहास, किसान, वैतालिक, शकुन्तला, पत्रावली आदि कृतियाँ प्रकाशित हुईं, किन्तु इन समस्याओं का संख्यावृद्धि के अतिरिक्त विशेष महत्व नहीं है। परन्तु, सन् १९२५ में एक छोटी सी किन्तु महत्वपूर्ण कृति गुप्त जी ने प्रदान की, वह थी 'पंचवटी'। कथा-प्रवाह, स्वाभाविक' प्रकृतिवर्णन तथा भाषा-शैली की दृष्टि से यह छोटी सी रचना अपूर्व सिद्ध हुई। सूक्ष्म चित्रण और सुन्दर भाव सज्जा की दृष्टि से इसका एक उदाहरण देखिए—

"कुछ कुछ अरुण, सुनहली कुछ कुछ, प्राची की अब भूषा थी।
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊपा थी।"

यहीं से कवि में छायावाद के अंकुर उगने लगे। 'अनघ' और 'स्वदेश-संगीत' भी इसी वर्ष की रचनाएँ है, कवि की अभिव्यक्ति की शैली इनमें एक नए मोड़ को अपना रही है।

सन् १९२७ में राष्ट्र को जगाने के लिए कवि का 'हिन्दू' आया। 'हिन्दू' में गुप्त जी की काव्य-धारा की दिशा बदल गई और उसकी गति अधिक तीव्र हो गई।

इसमें वह एक नेता की तरह हिन्दू धर्म की उन्नति के लिए कटिबद्ध प्रतीत होते हैं। इस कार्य के लिए प्राचीन गौरव और वैभव को प्रस्तुत करना आवश्यक था, अतः सन् १९२८ में 'वक्र-संहार', 'वन-वैभव', 'शक्ति', 'सैरन्ध्री' तथा सन् १९२९ में 'गुरुकुल' और 'विकट-भट'-रचनाएँ कवि के द्वारा प्रकाशित की गई। इन सब में कवि ने प्राचीन इतिहास और पुराणों की कथाओं को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। परन्तु इनमें नैतिक उपदेश की क्षमता का ही आधिक्य है, काव्य-सौन्दर्य का नहीं। परन्तु इसी समय गुप्त जी ने एक सुन्दर कृति भी प्रदान की, जिसका नाम 'झंकार' है इस पर छायावादी शैली और रहस्यवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

सन् १९३२ में हमें कवि की वास्तविक कला के दर्शन होते हैं, जब उसने हमें 'साकेत' प्रदान किया। इस रचना ने गुप्त जी को 'महाकवि' के पद पर आसीन कर दिया। गुप्त जी की प्रगति का यह महत्वपूर्ण नमूना है। भौतिक चिन्हों पर वर्णित इसकी राम-कथा ने बड़ी तीव्रता से पाठकों को मोह लिया। राम के प्रति कवि की वैष्णवी आत्मा इसमें और भी अधिक प्रबल हो उठी और वह कह उठा—

'राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए सभी कहीं नहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।"

उपेक्षिता उर्मिला को प्रधानता देने के कारण इसका महत्व द्विगुणित हो उठा। १९३२ के भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों की परछाहीं भी इस पर पड़ी है, महाकवि की दृष्टि से भी यह अत्यधिक सफल कृति है। इसलिए हिन्दी के महाकाव्यों में इसका एक विशिष्ट स्थान है।

कवि के ऊपर गाँधीवाद का प्रभाव बहुत पहले से दिखाई पड़ता है। सत्याग्रह, अविनय–अवज्ञा–आन्दोलन, अछूतोद्धार, अहिंसा को किसी न किसी प्रकार कवि ने अपनी कृतियों में स्थान दिया है। नारी वर्ग के उत्थान की इच्छा भी नवयुग की एक विशेषता है, कवि को भी उससे प्रेरणा मिली, साकेत की उर्मिला के प्रति इसलिए कवि की संवेदना प्रगट हुई है। परन्तु उसमें उसे पूरा अवसर नहीं मिल सका, अतः सन् १९३३ में उसने एक नवीन कृति 'यशोधरा' प्रस्तुत की।

कला की दृष्टि से कवि की यह कृति 'साकेत' से श्रेष्ठ है। शैली की दृष्टि से यह कवि का सर्वथा नवीन प्रयोग है। इसमें सब तो नहीं किन्तु अधिकांश गीत बड़े मनोहारी हैं, इनकी भावुकता, तन्मयता और शैली कवि को छायावादी कवियों की कोटि में पहुँचा देती है।

इसके पश्चात् सन् १९३४ से सन् १९४० तक गुप्तजी ने 'मंगलघट,' 'द्वापर,' 'सिद्धराज,' 'वस्तुप्रिया' तथा 'नहुष' आदि काव्य-कृतियाँ भेंट कीं और तब से अबतक अनेक छोटी-बड़ी रचनायें देकर वे हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

इस प्रकार संक्षेप में यह प्रगट है कि गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति की एक लम्बी शृंखला है जो कि द्विवेदी-युग से लेकर आज तक चली आई है। इस लम्बी अवधि की प्रत्येक मुख्य स्थिति ने कवि को प्रभावित किया है। गुप्त जी उन सबको समेटे रहने पर भी अपने साहित्यिक ध्येय से विचलित नहीं हुए। छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और आज के प्रयोगवादी युग में भी उन्होंने द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता का अंचल नहीं छोड़ा, किन्तु प्राचीन के प्रति मोह और नवीन के प्रति आकर्षण उनके काव्य को मुख्य विशेषता है, इसलिए उन्होंने सबसे अपनी भावना की गोद में भर लिया है। इस महान् गुण के कारण हम उन्हें आधुनिक युग का प्रतिनिधि कवि सहज ही में कह सकते हैं।

प्रश्न २—यशोधरा काव्य को किस विधा में रखी जा सकती है ? तर्कपूर्वक उत्तर दीजिए।

अथवा

"लो कविता, लो गीत, लो नाटक और लो गद्य-पद्य, तुकान्त, अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं।" यशोधरा के सम्बन्ध में गुप्त जी के इस कथन का आशय समझाइये।

अथवा

यशोधरा किस प्रकार का काव्य है, क्या कवि को इस पद्धति को अपनाने में सफलता मिली है ?

उत्तर—डा० सत्येन्द्र ने गुप्त जी की काव्य-शैलियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनकी "छठी शैली है मिश्रित शैली-नाटक, गीति, प्रबन्ध, पद्य और

गद्य सभी के मिश्रण की भाँति और यह है यशोधरा।" अर्थात् उन्होंने यशोधरा को काव्य की किसी एक विद्या के अन्तर्गत न रखकर उसे सभी काव्य-प्रकारों से संयुक्त माना है।

इसी मत के समर्थक डा० श्यामसुन्दर दीक्षित लिखते हैं कि यशोधरा "खण्ड-काव्य नहीं है परन्तु खण्ड-काव्य की समस्त विभूतियाँ रखता है। उसमें प्रबन्धात्मकता है। वह गद्य और पद्य मिश्रित होने के कारण चम्पू भीं है और महान् पुरुष तथा महिमामयी नारी का वर्णन होने से वह महाकाव्य भी है। उसमें नाटकीय कथोपकथनों के कारण अभिनेयता की प्राप्ति है। इस प्रकार वह नाट्य-काव्य भी है। वह 'गुलदस्ता' है. जिसमें विभिद्ध रंगों के पुष्पों का चयन किया गया है।"

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'यशोधरा' को प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत ही माना है और कहा है कि इसकी रचना 'नाटकीय ढंग' पर है तथा भाव-व्यंजना प्राय: गीतों में है।

कुछ विद्वान कथा के आधार पर 'यशोधरा' को खण्डकाव्य मानते हैं। परन्तु, अब कई विद्वान् कलेवर के आधार पर इसे चम्पू काव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। रामरतन भटनागर कहते हैं कि "शैली की दृष्टि से उसका रूप 'गद्य-पद्यमय' काव्य (चम्पू) का है।" कुछ लोग यशोधरा में गीतों की प्रधानता और अभिव्यक्ति के आधार पर उसे 'गीति-प्रबन्ध-काव्य' या 'मिश्रित–गीति-काव्य' कहना उचित समझते हैं। जहाँ विभिन्न विद्वानों के मत यशोधरा के सम्बन्ध में इस प्रकार पृथक-पृथक हैं वहाँ स्वयं यशोधरा की विद्या की बात मस्तिष्क में एक विशाल प्रश्नवाचक चिन्ह बना देती है, और उसके हल के लिए परेशान कर देती है!

वैसे तो सभी विद्वानों के तर्क कुछ न कुछ तथ्य लिए हुए हैं। परन्तु उनके निष्कर्ष में दृढ़ता का अभाव है, इसीलिए मन कहता है कि क्यों न क्रम से यशोधरा को सांगोपांग निरख कर एक निश्चित बात कही जाय, जो अब तक उत्पन्न हुए सारे भ्रमो को दूर कर सके! अस्तु, सभी प्रचलित विद्याओं में यशोधरा को रख कर हम देखेगे कि किस रूप में वह अधिक सुन्दर लगती है।

महाकाव्य और खण्ड काव्य की कसौटी पर यशोधरा : महाकाव्य और खण्डकाव्य दोनों प्रवन्ध काव्य के भेद हैं। इसका निश्चय वस्तु, कलेवर और उसका विभाजन, छंद और शैली के आधार पर किया जाता है। महाकाव्य की कथा सम्पूर्ण जीवन को समेटे रहती है, उसका आकार विस्तृत होता है, कम से कम उसमें आठ सर्ग होते हैं,—यात्रा, युद्ध, प्रकृति वर्णन, अन्तर्कथाओं और उपकथाओं का समावेश होना उसमें आवश्यक है, छन्दों की विविधता भी उसका एक गुण है। इस प्रकार महाकाव्य के लिए 'कथा' का सबसे अधिक महत्व है और अन्य लक्षण उसकी प्रवन्धता की पुष्टि करते हैं। कहना न होगा कि 'यशोधरा' में इस गुण का सर्वथा अभाव है, प्रवन्धकता की क्षीणधारा ही उसमें वह रही है, अतः 'यशोधरा' महाकाव्य की कोटि में नहीं रखी जा सकती।

खण्डकाव्य महाकाव्य का-लघुस्वरूप होता है, उसकी सीमाएं संकीर्ण होती हैं। कथा में जीवन का एक प्रमुख अंश, पात्रों की न्यूनता, संक्षिप्त सर्ग बद्धता। (कभी-कभी इसका अभाव भी होता है), एक ही छन्द का प्रयोग, अन्तर्कथाओं और उपकथाओं का प्राय: अभाव खण्डकाव्य के मुख्य लक्षण हैं। प्रगट है कि इसमें भी मुख्य स्थान 'कथा' का ही है, अन्य वातें प्रवन्धत्व के निर्वाह के लिए ही आवश्यक हैं। अब यदि केवल कथा का विषय लें तो 'यशोधरा' में गौतम और यशोधरा के जीवन का सबसे अधिक मार्मिक अंश लिया गया है, प्रवन्धता प्रच्छन्न रूप से है ही। अतः लगता है कि 'यशोधरा' खण्डकाव्य की सीमाएँ छू रही है, उसका अधिकांश शरीर खण्डकाव्य का वाना पहने है। अब उसे पूर्ण रूप से खण्डकाव्य कहने में हमें एक ही वात रोकती है और वह है गद्य का प्रयोग। वह हो कैसा भी पर 'यशोधरा' के शरीर का वह एक अङ्ग है और उसकी उपेक्षा करना 'यशोधरा' का अंग-भंग करना है। अतः हमें देखना पड़ेगा कि 'खण्डकाव्य' के साम्य रखने वाली क्या अन्य कोई विधा हो सकती है जिसमें 'यशोधरा' पूरी तरह खप जाय।

नाटक की कसौटी पर यशोधरा—आचार्य भरत ने नाटक के तीन तत्व—वस्तु, नेता, रस माने हैं आज उन्हें छः तत्वों में बाँट लिया गया है। वस्तु को अंक, दृश्य आदि के द्वारा व्यवस्थित रखना नाटक के लिए आवश्यक है। अतएव वस्तु के सम्बन्ध में नाटककार को अत्यधिक सतर्क रहना पड़ता है, साथ ही गद्य

का प्रयोग कथा-प्रवाह की रक्षा के लिए तथा सामाजिक को सरलता से समझाने के लिए अधिक होता है। यशोधरा में गद्य का प्रयोग हुआ है पर वह इस दृष्टि से अपर्याप्त है। अतः यद्यपि उसमें प्रारम्भ में मंगलाचरण, कथोपकथन शैली, स्वगत कथन आदि जो नाटक की विशेषताएँ हैं, प्राप्त हो जाती हैं, साथ ही भाषा की सरलता, उद्देश्य की पूर्णतया, वातावरण का चित्रण भी उसमें मिलता है परन्तु फिर भी यशोधरा नाटक नहीं है। अभिनय के प्राण का उसमें सर्वथा अभाव है। हाँ, उसकी पद्धति अवश्य नाटकीय है। इसीलिए शुक्ल जी ने उसे 'नाटकीय ढंग पर लिखा हुआ काव्य' कहा है।

चम्पू काव्य की कसौटी पर 'यशोधरा'—चम्पू काव्य दृश्य और श्रव्य काव्य की भेद श्रेणी में आता है। यह विषयानुसार न होकर काव्य के कलेवर के अनुसार होता है। इसकी शैली नाटक की भाँति संवाद-प्रधान न होकर वर्णन-प्रधान होता है तथा गद्य-पद्य दोनों मिले रहते हैं। यशोधरा में चम्पू-काव्य का एक ही तत्व मिलता है—गद्य-पद्य का मिश्रित प्रयोग। परन्तु इसमें वर्णनात्मकता का सर्वथा अभाव है, अतः इसे चम्पू-काव्य कहने में भी संकोच होता है। हिन्दी साहित्य में पण्डित रामदीन मिश्र ने प्रसाद के 'उर्वशी' और अक्षयवटजी के 'आत्म-चरित चम्पू' को चम्पू-काव्य की सीमा में रखा है यद्यपि इन ग्रन्थों में भी चम्पू काव्य के सभी गुण नहीं हैं। आधुनिक दृष्टि से अज्ञेय की कृति 'चिन्ता' चम्पूकाव्य है।

एकार्थकाव्य और 'यशोधरा'—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने एकार्थ-काव्य उस काव्य को माना है, जो प्रबन्धकाव्य होते हुए भी महाकाव्य तक नहीं पहुँच पाते, परन्तु वर्णनों की विषदता के कारण जो खण्डकाव्य की परिधि से ऊँचे उठ जाते हैं। अतः प्रियप्रवास को एकार्थकाव्य कहा जा सकता है। यशोधरा में छिपे तौर पर ही प्रबन्धात्मकता है और महाकाव्य के लक्षण भी उसमें नहीं मिलते अतः यशोधरा को एकार्थकाव्य कहना भी भ्रान्तिमूलक है।

मुक्तक-काव्य और 'यशोधरा'—मुक्तक-काव्य स्फुट विषयों पर लिखा जाता है, इन विषयों का पूर्वापर कोई सम्बन्ध नहीं होता। इससे तीन भेद हैं—नीति-मुक्तक, स्फुट-मुक्तक, गीति-मुक्तक अथवा गीति-काव्य। गीत-काव्य में हृदय की क्षणिक भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। यशोधरा में गीतों की भरमार

है, परन्तु उन गीतो में सामूहिक-भावना का वर्णन न के बराबर है, साथ ही उनके भीतर अन्तर्भुक्त है, इससे यशोधरा को गीति-मुक्तक या गीति-काव्य भी नहीं कह सकते।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यशोधरा में सबके समन्वय से कवि ने एक नया प्रयोग किया है। रामरतन भटनागर इस लिए यशोधरा को प्रयोगवादी रचना कहते हैं। परन्तु, केवल इतना कहने से ही हम सन्तोष नहीं कर सकते। लगता है कि कवि के मन में प्राचीनता के प्रति मोह और आधुनिकता के प्रति आकर्षण उत्पन्न होने से एक घुटन हो रही है, यशोधरा इस घुटन का ही परिणाम है। प्राचीनता उसके संस्कारों में समा गई है, आधुनिकता के प्रभाव ने उसे ढाँक लिया है, इन तत्वों को आत्मज्ञात् न करने से कवि खीझ उठा है, वेतुका हो उठा है, इसी मनोवृत्ति से यशोधरा की वेतुकी सृष्टि हुई है। यह कवि पर व्यंग्य नहीं है, बल्कि वह यथार्थ है जिसने कुछ समय तक सारे समाज का प्रतिनिधित्व किया है, और वह भी समाज की अनिश्चितता। यशोधरा में लेखक की सप्रयास समन्वयवादी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। कुछ बातों को वह पूर्णरूप से नहीं निभा सका, कुछ में वह सर्वथा श्लाघ्य है।

कलेवर और अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'यशोधरा' में गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। कवि ने एक नए ढंग के गीतों को यशोधरा में अपनाने का प्रयत्न किया है। नवीन गीतों में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। कवि अपनी अथवा किसी पात्र की मानसिक दशाओं की गहराई के साथ वर्णन करता है, अतः [नये गीत पुराने गीतों से निम्न प्रकार के हैं, पुराने गीतों में समष्टिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति होती थी, व्यष्टिगत भावनाओं की नहीं। इस प्रकार के गीतों को गीति कहा गया है। इनमें भाव, लय, पात्र की मानसिक स्थिति का तीव्रतापूर्ण वर्णन अनिवार्य होते है। इनका लक्ष्य एक ही भाव की अभिव्यक्ति करना होता है अनेक का नहीं। भाव, उद्देश्य तथा प्रभाव का गम्भीर विलयन इन गीतों की मुख्य विशेषता है। 'यशोधरा' में यशोधरा तथा गौतम से मनोभावों का सुन्दर विश्लेषण हुआ है, इस प्रकार के अनेक सुन्दर गीतों से वह आच्छादित है। बीच बीच में कवित्त, दोहा आदि का भी विधान किया गया है और प्रभाव बढ़ाने के निमित्त सम्वादों का भी प्रयोग किया गया है। अतः यशोधरा एक मिश्रित-गीति-काव्य बन गया है। परन्तु

नाटकीयता और प्रबन्धात्मकता की भी हम पूर्ण रूप से उपेक्षा नहीं कर सकते, अतएव हम कह सकते हैं कि यशोधरा नाटकीय पद्धति पर लिखा हुआ गीति-प्रबन्ध काव्य है। इस गीति-प्रबन्ध-काव्य को कुछ लोग 'मिश्रित गीति काव्य' कहना अधिक उचित समझते हैं और कुछ उसे चम्पू काव्य तक खींच ले जाते हैं। हमारी समझ में यशोधरा अपने ढँग का अकेला ही काव्य है अतः यदि उसे हम 'गीति-प्रबन्ध-काव्य' नाम भी दे देते हैं तो न तो कोई भ्रम ही पैदा होता और न अनौचित्य ही।

अब प्रश्न यह है कि इस दृष्टि से 'यशोधरा' कहाँ तक एक सफल कृति है! काव्य की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि वह पाठक को पूर्णतया प्रभावित करले। 'यशोधरा' में प्रभावित करने की पूर्ण शक्ति है। यशोधरा की विरह-वेदना में पाठक आत्मविभोर हो जाता है, डूब जाता है, सिसकियाँ भरने लगता है। एक ही बात इसमें खटकती है, वह है गद्य का प्रभाव—हीन प्रयोग। नवीन शैली प्रस्तुत करने के मोह का संवरण न कर सकने के कारण ही कवि ने गद्य भी उसमें सम्मिलित कर दी है। इससे पाठक के मन में पहले से चला आया भावावेग शिथिल हो जाता है। यह शिथिलता एक प्रकार की सीमा पैदा कर देता है। संवादों का प्रयोग कहीं कहीं तो चमत्कार पैदा करता है, परन्तु कहीं कहीं वह अत्यधिक हास्यात्मक बन गया है, जिसे पढ़ कर कवि के प्रति दया आने लगती है। फिर भी नवीन प्रयोग की दृष्टि से लेखक का प्रयास सराहनीय है।

यशोधरा में सर्वाधिक प्रयोग गीतों का हुआ है। इन गीतों को हम नए ढंग के गीति ही कहेंगे। अनुभूति की तीव्रता, भाव प्रवणता, और आत्माभिव्यंजन जो गीति के प्रमुख गुण हैं 'यशोधरा' के अनेक गीतों में प्राप्त होते हैं। 'नदी प्रदीप दान ले', 'सो अपने चंचलपन सो' तथा 'रुदन का हँसना ही तो गान' आदि गीत इस दृष्टि से अद्वितीय हैं। लय और गेयता भी इनमें पूरी तरह समाई हुई है। परन्तु कुछ गीतों में कवि ने अर्थहीन तुक मिलाने का प्रयास किया है, उसका यह मोह वहुत पुराना है। नम्र, तक्र, शक्र, चक्र आदि कर्णकटु और प्रचलित शब्द ऐसा सोचने के लिए वाध्य करते हैं। कुछ गीत कथा सूत्र को समेट कर चलने के कारण भी नीरस हो गए हैं। भाव-विशेष की अभिव्यक्ति ही गीतों में सौन्दर्य और माधुर्य भर सकती है, साधारण बातचीत में कहने से वह अपने गुण को खोकर

नीरस और भार स्वरूप लगने लगता है। इसी प्रकार तीता, मीता, रीता आदि अपरिष्कृत शब्द गीतों का वजन कम कर देते हैं।

वास्तविक वात यह है कि 'यशोधरा' कितनी सुन्दर बनाई जा सकती थी, हमें ये सुझाव नहीं देते हैं, बल्कि वह कितनी सुन्दर बन पड़ी है, यही देखना चाहिए और इस दृष्टि से कवि की सारी अभिलाषाएँ 'यशोधरा' में पूर्ण हो गई है, यही उसकी सफलता है। पाठक भी अन्ततक यही स्वीकार करता है कि 'बिखरा हुआ काव्य वैभव' होने पर ही यशोधरा एक सफल कृति है।

प्रश्न ३—'यशोधरा' के आधार पर गुप्त जी की नारी-भावना पर एक निबन्ध लिखिए।

अथवा

'नारी-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में गुप्त जी का दृष्टिकोण पूर्णतया भारतीय रहा है।' इस उक्ति का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—पाश्चात्य सम्पर्क के परिणामस्वरूप भारतीय जीवन–दर्शन और संस्कृति में एक महान परिवर्तन हुआ। जीवन के प्रतिविम्ब स्वरूप काव्य के विभिन्न रूप कविता, कहानी, नाटक, निवन्ध और उपन्यास की रचना, शैली और अभिव्यक्ति में थी एक हलचल हुई और फलतः इनकी प्राचीन परिपाटियों का जीर्णशीर्ण भवन भरभरा कर वैठने लगा, हाँ, नींव के प्रति अब भी मोह बना रहा। परिवर्तन की यह रूपरेखा तो हमें भारतेन्दु-युग से ही मिल जाती है, किन्तु द्विवेदी-युग के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त में इस परिवर्तन का स्वरूप अनेक कारणों से स्पष्ट और श्लाध्य हुआ है। हमें अन्य बातों की ओर ध्यान नहीं देना है। एक वात जो हमारे विषय से पूर्णतया सम्बन्ध रखती है, वह है नारी–हीन–स्थिति पर मार्मिक आक्रोश। वैदिक युग में अपाला, घोषा और विश्ववारा के अतिरिक्त जिन्हें सारे अधिकारों से च्युत रखा गया, बुद्ध ने जिनके कारण अपने पाँच हजार वर्ष चलने वाले धर्म को केवल पाँच सौ वर्ष तक ही चलने की वात कही, आचार्य शंकर ने जिन्हें 'नरकस्य द्वारम्' कह डाला, भक्तियुग के प्रतिनिधि कवि तुलसी ने जिन्हें 'ताड़ना' का अधिकारी ठहराया और सारे दोष उन्हीं के माथे मढ़ दिए, तथा रीतिकाल में जो एक मात्र काम-क्रीड़ा का साधन

समझी गई, वह नारी वर्ग यदि मन ही मन अपने को अधम मानने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? परन्तु,

उनकी विवशता भरी वेदना पर, इस युग का कवि रो उठा, हाहाकार कर उठा और उसने अपनी करुण-निर्झरिणी से उस कुत्सित परम्परा की वे दीवारें वहा दीं, जो अब तक जमी हुई थीं। एक नई अनुभूति जगी, जिसमें नारी श्रद्धा का पात्र बनी, पूजा की अधिकारिणी हुई और फिर से युगसृष्टा कवि ने प्रचलित किया 'यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता।' इस काल में निवृत्ति की धारा शुष्क होती गई और प्रवृत्ति की महिमा बढ़ती गई, इसलिए गार्हस्थ्य जीवन गौरवपूर्ण हो उठा और उसके स्वाभाविक परिश्रम के रूप में नारियाँ आदरणीया हो उठीं। अस्तु, एक ओर साहित्य में सती-साध्वी, वीरा, बलिदानी और त्यागमयी नारियों के रूप चित्रित किए जाने लगे और दूसरी ओर उनके बन्धनों के प्रति करुणा-लहरी प्रवाहित हो उठी।

"युग युग की बंदिनी देह की कारा में निज सीमित"

'ग्राम्या' (पंत)

गुप्त जी ने उनके पंगु, अपाहिज और अशिक्षित रहने का दायित्व पुरुषों के ऊपर रखते हुए 'भारत-भारती' में मुक्त कंठ से कहा—

"विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी।
अर्द्धांगिनियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जायगी॥"

ठीक इसके पश्चात् यह अनुभूति पैदा हुई कि नारी नर की समकक्षिणी एवं उसका पूरक अंश है और तदुपरान्त नारी के प्रति पुरुष की उदारता और न्याय-भावना का द्वार खुल गया। छायावाद के आगमन के साथ हिन्दी में यह भावना जग पड़ी—कि नारी नर से श्रेष्ठ है, वह पुरुष में प्रेरणा भरने वाली शक्ति है, वह रमणीयता का प्रसार करने वाली रश्मि है, वह स्वप्नों की देवी है जिसे श्रद्धा का पुष्प अर्चित करना चाहिए, अँगुलियों के स्पर्श से कलंकित नहीं।

"तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु और हास, सृष्टि के उर की साँस।
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान, तुम्हीं स्वर्गिक आभास।
तुम्हारी सेवा में अनजान, हृदय में मेरा अन्तर्धान।
देवि ! माँ ! सहचरि, प्राण !"

'पल्लव' (पंत)

तथा

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में ।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में ॥"

'कामायनी' (प्रसाद)

परन्तु नारी के तितली स्वरूप की इस युग के कवि ने सर्वथा उपेक्षा करके भारतीयता को ही स्वीकार किया है;

"तुम सब कुछ हो फूल, लहर, तितली, विहगी मार्जारी ।
आधुनिके तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी ॥"

भारतीय साहित्य को आधुनिक स्वरूप देने का बहुत कुछ श्रेय श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर को है । उनका हृदय यह देखकर चंचल हो उठा कि सीता के वर्णन में निरत महाकवि तुलसीदास ने त्यागमयी उर्मिला का परिचय तक भी नहीं दिया है । अतः उन्होने 'काव्येर उपेक्षिता नारी' निबन्ध लिखकर साहित्यजगत का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया । इसी आधार पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' नामक निबन्ध लिखा । श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' 'उपेक्षिता उर्मिला' नाम से एक खण्ड-काव्य की ही रचना कर डाली । इन सबसे प्रभावित होकर गुप्त जी ने नारी का जितना गम्भीर, मनोरस और करुण चित्र खींचा, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं ।

सर्वप्रथम 'भारतभारती' में गुप्त जी ने भारतीय नारियों की असह्य दुरवस्था को चित्रित करते हुए उनकी इस स्थिति का दायित्व पुरुषों पर डाला ।

"ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे ।
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे ॥"

'केशों की कथा' नामक कविता में उन्होंने द्रौपदी के रूप में नारी का चण्डी रूप देकर नवीन नारी की सुन्दर कल्पना की है, परन्तु, गुप्त जी की नारी भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर' और 'विष्णुप्रिया' में हुई है । इन सब में नारी के प्रति कवि की एकान्त भक्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है । 'साकेत' की उर्मिला, 'यशोधरा' की यशोधरा और विष्णुप्रिया की विष्णुप्रिया अपने-अपने पतियों के वैराग्य-प्रेम से पीड़ित हैं, अतः वे उन सभी भारतीय नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनके पतियों ने उन्हें मोक्ष-सिद्धि के मार्ग की बाधा

मानकर छोड़ दिया अथवा जिनका वैवाहिक जीवन इसलिए कष्टमय हो गया कि उनके पति किसी 'बड़े लक्ष्य की सिद्धि' में जा लगे थे। इनमें उर्मिला का वियोग लक्ष्मण के लौट आने पर समाप्त हो जाता है, किन्तु यशोधरा और विष्णुप्रिया आजीवन जीवित वैधव्य झेलती रहीं। भारतीय साहित्य में व्यक्तित्व-विहीन इन नारियों को गुप्त जी ने महान व्यक्तित्व प्रदान कर दिया, उसमें भी 'यशोधरा' के व्यक्तित्व में अनोखा निखार आ गया है, क्योंकि उर्मिला की वेदना का अन्त बनवास की समाप्ति के साथ हो जाता है, इसलिए कवि उसपर जी खोलकर सहानुभूति नहीं उड़ेल सका। परन्तु निरन्तर अथाह वेदना में डूबी हुई 'यशोधरा' के प्रति उसकी सारी सहानुभूति मुखर हो उठी, किन्तु यशोधरा पर लिखने की प्रेरणा कवि को 'साकेत' से ही मिली है। कवि ने यशोधरा की भूमिका में लिखा है—

"और उनका श्रेय भी 'साकेत' की उर्मिलादेवी को ही है जिन्होंने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया।"

तात्पर्य यह है कि 'साकेत' में नारी समस्या पर जिन बातों को कहने के लिए कवि को उपयुक्त अवसर नहीं मिला, वह 'यशोधरा' में उसे मिल गया है इसीसे यशोधरा का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर है। उर्मिला को लेकर कवि ने यह सोचना आरम्भ किया कि नारियों की समस्या क्या है, पतियों के वैराग्य के साथ उसका क्या सम्बन्ध है तथा नवयुग की दृष्टि से इस समस्या का समाधान क्या हो सकता है? इस चिन्तन का आरम्भिक रूप हमें उर्मिला में मिलता है किन्तु उसकी पूर्ण परिणति 'यशोधरा' में हुई है। दिनकर जी का यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि—

"वास्तव में उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया ये एक ही चिन्तन के तीन सोपान हैं तथा क्रमशः इनमें एक ही भाव का उत्तरोत्तर विकास होता गया है।"

'यशोधरा' में नारी का करुणा स्वरूप साकार हो उठा है। भारतीय साहित्य के किसी भी विरह वर्णन में करुणा की इतनी गहरी चोट नहीं है जो पुरुषों की वैराग्य-कामना के इस पाप-पक्ष पर प्रहार करता जो पत्नियों को जीवित वैधव्य झेलने को विवश करता हैं। यशोधरा के मन में यही तो ग्लानि है, वह सोचती है कि मोक्ष यदि जीवन का सर्वोच्च ध्येय है तो हम नारियां उससे वंचित क्यों रहें। यह शंका यशोधरा के रूप में प्रत्येक भारतीय नारी की है। संभवतः वे यह भी

सोचती होगी कि क्या पति पत्नी साथ रह कर मुक्ति की साधना नहीं कर सकते? ऐसा सोचते सोचते नारी का स्वाभिमान चमक उठता है और वह पति की क्षमता को तोलकर उसे सचेत करने लगती है।

यशोधरा के स्वाभिमान की सीमा :—

युग-कवि ने यशोधरा के सहारे स्वाभिमान की घुटी पिला कर अबला को सबला बनाने की चेष्टा की है। यशोधरा गर्विणी नारी हैं, जो संकट उसके सिर पर आ पड़ा है, उसके सभी पहलुओ पर वह गम्भीरता से विचार करती है। उसका विश्वास है कि पुरुष का कर्मक्षेत्र नारी का कर्मक्षेत्र भी हो सकता है। तभी तो उसे अखरता है कि–

"सिद्ध हेतु स्वामी गए यह गौरव की बात
पर चोरी चोरी गए यही बड़ा व्याघात"

× × ×

"हाय ! स्वार्थिनी ऐसी थी मैं रोक तुम्हे रख लेती ?
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती ?"

अतएव उसका क्षत्रित्व उभर आता है वह कहने लगती है कि हम क्षत्राणियाँ ही तो तुम्हें निरन्तर विदा करती रही हैं। मै तो गा गाकर तुम्हें विदा देती और उस समय जो गौरव मिलता उसके सहारे सारा वियोग-भार झेलती रहती। वह तो सोचकर विलख उठती है कि उसका अस्तित्व ही क्या रहा यदि वह 'सिद्ध-मार्ग की बाधा' है। और तब उसके तेवर चढ़ जाते हैं। बड़े विश्वास के साथ वह घोषणा करती है—

"अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।
मै ती नहीं अनाथ जगत में मेरा भी प्रभु पति है।"

अतएव—

"जाओ नाथ अमृत लाओ तुम मुझमें मेरा पानी।"

किन्तु गुप्त जी इससे अधिक आगे नहीं बढ़े हैं क्योंकि भारतीयता का उल्लंघन करना उनका अभिमत नहीं था। अतएव मन मसोस कर उनकी यशोधरा कहने लगती है—

"चेरी ही मैं वहुत तुम्हारी मुक्ति तुम्हारी रानी ।"

और ,'प्रिय तुम तपो सहूँ मैं भरसक, देखूँ बस हे दानी ?

कहाँ तुम्हारी गुण गाथा में मेरी करुण कहानी ?"

यशोधरा की यह वेदना सोचने-को वाध्य करती है कि बुद्ध के अमृत और यशोधरा के आँसू में किसका मूल्य अधिक माना जाय ? जो यशोधरा जैसी पत्नी को ढकेल कर चेरी क्या उपेक्षित के पद पर फेंक देता हो, क्या उसका महत्व अक्षुण्ण रहता है ? पुरुषों के यश के पीछे नारियों का बलिदान होता है । फिर भी यशोधरा यही चाहती है कि "तुम्हें अप्सरा विघ्न न व्यापे यशोधरा कर धारी" यशोधरा के अभिमान के स्वाभिमान की यही सीमा है । पत्नी की इससे बड़ी शंका और हो भी क्या सकती थी ?

यशोधरा की चिन्तन शीलता :—

यशोधरा के व्यक्तित्व में गाम्भीर्य एक कारण उसकी चिन्तनशीलता भी है । कवि ने यशोधरा के दार्शनिक चिंतन के भीतर से हिन्दुत्व के प्रवृत्तिमार्गी रूप के दर्शन करवाए हैं । यह स्पष्टत: नवयुग का प्रभाव है । यशोधरा एक ऐसे धर्म का आख्यान करती है जो प्रवृत्ति मार्गी बौद्धमत के किंचित विपरीत पड़ता है। यशोधरा का चिन्तन यह है कि हाथ में आए हुए जीवन की उपेक्षा करके मुक्ति खोजने का प्रयास व्यर्थ है । धर्म की दृष्टि से अर्थ और काम का उपभोग तो स्वत: प्रप्त हो जाता है । फिर जीवन को त्यागने की क्या आवश्यकता ? ठीक है कि जीवन नश्वर है, दु:खपूर्ण है, किन्तु न तो वह सर्वथा नाश वान ही है और न उसमें सदैव काँटे ही हैं । आत्मा के अस्तित्व के साथ हमारी सार्थकता रहती ही है । हाँ, आत्मा पर विश्वास न करने पर हम निरर्थक हो जाते हैं । सम, दम, नियम, संयम का पालन करते हुए जीवन का उपभोग करने में कोई दोष नहीं है । यह संसार आनन्द मय है अत: वह कहती है कि मुझे यदि वारवार जन्म लेकर संसार में आना पड़े तो मैं इसे वुरा नहीं मानती ।'

यशोधरा का व्यापक व्यक्तित्व :—

यशोधरा प्रकृति का समादर करती है, अवहेलना नहीं । वह व्यक्ति से समष्टि को अधिक महत्व देती है । मृत्यु से इसी लिए वह नहीं डरती, क्योंकि मृत्यु तो

व्यष्टि की होती है, समष्टि की धारा तो सदा अप्रतिहत होकर चलती रहती है। तब आत्मा यदि निरन्तर पृथ्वी पर अवतरित हो तो इसमें दोष क्या है। मोक्षानुरागी इच्छा को दुःख मानते हैं तो क्या मोक्ष की कामना इच्छा से भिन्न वस्तु है? जीवन की हीनता तभी है जब हम केवल अपने लिए जीते हों, किन्तु दूसरों के लिए जीवन धारण करना तो परम कल्याण का कार्य है। संसार की सेवा करते हुए हम बार बार क्यों न जन्में और क्यों न मरें?

"केवल काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।"

यशोधरा के दार्शनिक चिन्तन की यह व्यापकता है।

यशोधरा के व्यक्तित्व में धैर्य और आत्म विश्वास :—

यशोधरा ने अपने विरह को बड़ी वीरता और धैर्य के साथ झेला। जब उसने सुना कि सिद्धार्थ अपने केश उतार कर सन्यासी हो गए हैं, तो उसने भी अपने बाल काट कर फेंक दिए। यही नहीं, शुद्धोधन जब सिद्धार्थ की खोज करवाने को बेचैन होने लगे तो उसने उन्हें समझाया कि आपके पुत्र किसी बड़े संकल्प से निकले हैं अतः उन्हें खोजकर लौटाने का श्रम व्यर्थ होगा। हमें चाहिए कि यहीं से हम उनकी सफलता की कामना करें।

"उनकी सफलता मनाओ तात मन से,
सिद्ध लाभ करके लौटें वे शीघ्र बन से।"

अपने आत्म विश्वास और कुल-ललना के धर्म का निर्वाह उसने इस विषय परिस्थिति में भी निरन्तर किया। मगध में तथागत को आया हुआ जानकर शुद्धोधन उनसे मिल आने के लिए यशोधरा से कहते हैं तो वह लौह सी दृढ़ होकर कहती है—

"किन्तु! तात उनका निदेश बिना पास मैं
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी?"

भारतीय कुल-ललना का यही धर्म है कि वह घर में बैठकर प्रतीक्षा में ही अपनी आयु समाप्त कर दे। तभी तो उसने दृढ़ वृत लेखा है—

"भक्त नहीं जाते कहीं आते हैं भगवान।
यशोधरा के अर्थ, है अब भी यह अभिमान॥"

उसकी यह दृढ़ता उस समय और अधिक दिखाई पड़ती है जब तथागत कपिलवस्तु आकर अपने पिता के घर गए। क्षण भर में सारा नगर, सारा परिवार उनके चरणों में जा गिरा। किन्तु यशोधरा के धैर्य की तो यह अन्तिम परीक्षा है, इसलिए वह कहती है—

"यदि वे चल आए हैं इतना तो दो पग है उनको कितना ?
क्या भरि वह मुझको जितना ?"

इस असीम आत्म विश्वास और महान दृढ़ता के सामने गृहत्यागी, सन्यासी तथागत भी अपने को भूल बैठे और वे यशोधरा के वृत पर अपना वृत निछावर करके स्वयं ही उसके भवन में जाकर कहने लगे—

"मानिनि ? मान तजो लो रही तुम्हारी बान।
दानिनि ? आया स्वयं द्वार पर तब यह तत्र भवान।"

कहते हैं इस अवसर पर भगवान बुद्ध ने कहा था—"आनंद, संसार के लिए बुद्ध हूँ किन्तु गोपा के लिए मैं अब भी सिद्धार्थ ही हूँ।"

यशोधरा की पति परायणता—पत्नी की दृष्टि में तो पति पति ही रहेगा चाहे वह योगी, महात्मा या पैगम्बर ही क्यों न हो जाय। यशोधरा का यह स्वरूप हमारी सहानुभूति को वरवस खींच लेता है, जब वह कहती है—

"चाहे तुम सबन्ध न मानों।
स्वामी किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।
पहले तो तुम यशोधरा के, पीछे होगे किसी परा के।
× × × ×
वधू सदा मैं अपने वर की, पर क्या पूर्ति वासना भरको ?
सावधान ! हाँ निज कुलधर की जननी मुझको जानो।"

इस प्रकार नवयुग के समय हमारे हृदयों में नारी-जाति के प्रति जिस सहानुभूति और सम्मान की भावना का उदय हुआ वह युग-कवि के भीतर से अनेक रूपों में व्यक्त हुई। किन्तु उन सबका जैसा पूर्ण प्रतिनिधित्व यशोधरा करती है वैसा और कोई नहीं कर पाती। उसके भीतर मातृत्व की उज्ज्वलता, गृहवधू की विनयशीलता एवं पत्नी की एकाग्र पतिपरायणता का अद्भुत संयोग है और उन

सबके ऊपर उसका कोमल उज्ज्वल स्वाभिमान है जो समस्त नारी-जाति का मस्तक ऊँचा करता है। जो भारतीय ललनाओं में यह प्रेरणा करता है कि विषम से विषम परिस्थितियों में भी वे अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता को कैसे ऊँचा उठाए रख सकती हैं। गोया प्रशंसनीय ही नहीं। पूर्ण रूप से श्रद्धेय भी है। तभी तो उसके श्वसुर के शब्दों के रूप में कवि ने युग की घोषणा दुहराई है—

"गोपा बिना गोतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।"

नारी की पुरुष पर यही विजय है। इस प्रकार गुप्तजी ने नारियों के प्रति सहानुभूति जगाकर उन्हें नर के समकक्ष ला दिया। उन्होने नारी-जाति के प्रति अपनी निश्छल सहानुभूति प्रगट करके पुरुषों के भीतर यह प्रेरणा जगाई कि हमें स्वेच्छा से नारियों को उनके अधिकार समर्पित कर देने चाहिए। परन्तु उन्होंने विद्रोहपूर्वक अधिकार माँगने वाली नारी को स्वीकार नहीं किया। यह गाँधी-मार्ग है और गुप्तजी साहित्य में गाँधी-भावनाओं के प्रतिनिधि भी रहे हैं। इसलिए उन्होंने विवशताओं से घिरी, शास्त्रें के अत्याचारों के पीड़ित एवं पुरुषों की उपेक्षा और निर्दयता से दलित नारी की ओर से पुरुषों से सहानुभूति की भीख माँगी है। 'यशोधरा' तक कवि की नारी-भावना का यही रूप रहा है। आगे चलकर 'विष्णुप्रिया' में वह विस्फोट का संकेत भी दे रहा है—

"कहता है "नारी पर नर का कितना अत्याचार है।
लगता है विद्रोह मात्र ही अब उसका उपचार है।"

किन्तु विद्रोह के ये स्फुल्लिंग प्राय: आकस्मिक रूप से ही छिटके हैं। वस्तुत: गुप्त जी ने सहनशीलता को नारी का परम धर्म माना है और उनका विश्वास है कि नारी इसी गुण से पुरुष को जीत सकती है। उस गुण को वे अत्यन्त करुण होकर कहते हैं।—

"सहने के ही लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी।"

—

प्रश्न ४—"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और, आँखों में पानी।"

कवि की उस उक्ति पर विचार कीजिए।

अथवा

'गुप्त जी ने 'यशोधरा' में 'पत्नीत्व' और मातृत्व के परम संवेदनीय और आदर्श चित्र उपस्थित किए हैं।' इस कथन पर अपना मत प्रकट कीजिए। very Imp.)

उत्तर—उपर्युक्त पंक्तियाँ 'यशोधरा' की कथा का सार कही जा सकती हैं। इसीलिए कवि ने शीर्षक के रूप में उन्हें मुख पृष्ठ पर अंकित कर दिया है। कवि की यह उक्ति एक ओर तो यशोधरा के व्यक्तिगत जीवन पर घटित होती है। वह ऐसी दुखिया है जिस पर पति-वियोग की गहरी व्यथा और पति की धरोहर को सम्हाले रहने का दुहरा भार है। पति से विछुड़ कर वह हृदय में उसकी मधुर स्मृति को सँजोए उनकी वाट जोहती हुई, आँसुओं की मांला गूँथ रही है और पति की अमूल्य धरोहर—अपनी गोद के शिशु को हृष्टपुष्ट बनाने के लिए अपनी शक्तिरूप दूध दान दे रही है। यशोधरा के बहाने इन पंक्तियों में युग युग की नारी का यह दुहरा उत्तर दायित्व सहज ही व्यंगित हो गया है। सम्पूर्ण इतिहास में नारी की यह करुण कथा ही छिपी है। यह महान ऐतिहासिक सत्य गुप्त जी की वाणी द्वारा दो पंक्तियों में प्रगट हो गया है, इनमें अपने बन्धनों के विरुद्ध युगनारी का करुण हा हा कार है। जिस नारी की सारी महत्ता छीन ली गई, जिसके सारे श्रम का गौरव पुरुषों ने अपना बना लिया, जो केवल भोग का साधन मात्र रह गई, उस अवला नारी के दो ही कार्य शेष रहे, पति और पुत्र के प्रति सच्चा रहना। नारी ने युगों तक अपने अधिकारों को भूल कर केवल अपनी सन्तान की ओर देखा, बिना बताए पति के चले जाने पर वर्षों तक अपने शरीर को गलाकर, रक्त के आँसू बहाकर पति के लौटने की प्रतीक्षा में आँखें बिछाए रही और सारी वेदना को मन में पिये हुए पुत्र की मुस्कान का मरहम अपने घावों पर चढ़ाती रही।

यह तो हुआ इस उक्ति का अर्थ। अब यशोधरा वे व्यक्तिगत जीवन में सभी सार्थकता पर विचार करना है। यशोधरा में नारी के रूप का क्रमिक विकास है। यशोधरा में हमें नारी के चार रूपों,-कुमारी, कामनी जाया और जननीमें दो का वर्णन ही प्राप्त होता है।

गुप्त जी ने यशोधरा के कोमार्य का विशेष विवरण नहीं दिया कहीं कहीं

जो अस्पष्ट सा विवरण वह सन्तोष प्रद नहीं है । कामिनी गोपा के यौवनावस्था की थोड़ी सी झलक अवश्य मिल जाती है ।

"सभी सुन्दरी बालाओं में मुझे उन्होंने माना ।
सबने मेरा भाग्य सराहा, सबने रूप बखाना ॥"

इससे अधिक इन दो रूपों के वर्णन 'यशोधरा' में नहीं मिलते, क्योंकि लेखक का उद्देश्य आगे के दोनों रूपों से ही पूर्ण होता है ।

जाया अथवा पत्नी के रूप में यशोधरा :—यशोधरा के मन में यह ग्लानि सदैव रहती है कि वह उपेक्षित और अपमानित है परन्तु फिर भी वह पति के प्रति अपने कर्त्तव्य को जानती थी, पति कुछ भी करे, नारी को उसके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए, पति के कार्यों की समीक्षा करने का विचार भी पत्नि-धर्म के विरुद्ध है । इसलिए यशोधरा अपनी सारी ग्लानि, सारी वेदना को दबाकर पति की प्रतिक्षा करती है क्योंकि नारी की गति उसका पति ही है, उससे पृथक होने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं । मान करते हुए भी यशोधरा को पति के चरणों में अपना सर्वस्व भेंट कर देना पड़ा । उसका स्वाभिमान का चरम लक्ष्य यहीं है कि वह 'वधू सदा अपने वर की' है । अतएव यद्यपि "उसके प्रियतम बन में हैं" किन्तु 'कौन इस मन में' कहकर वह पति की स्मृति करके निरन्तर उसकी वाट जोहती रहती है । प्रियतम उसके प्राण प्राण में समा गया है, उस चिरन्तर वन्दनीय मूर्ति का दर्शन पान न करने वाले चर्म-चक्षुओं का गल ही जाना उचित था, क्योंकि उसके विना कुल-ललना का पत्नीत्व, उसका समर्पण मिथ्या हो जाता, संसार पलट जाता, प्रलय मच जाती । उसके मन में तो प्रियतम उसी प्रकार समा गया है जैसे पवन में गन्ध ।

पत्नी यशोधरा आरम्भ से ही आसुओं से आर्द्र है और अन्त में भी वह इन आसुओं के अतिरिक्त और क्या पास थी, कुछ भी तो नहीं । यह है भारतीय पत्नी का पतिके लिए त्याग । उसके हृदय में सदैव एक काँटा सा कसकता रहा है वह जीवन भर आँसुओं को ही पीती रही । अश्रुस्नान उसके लिए पर्व-स्नान वन गया । पति नर से नारायण हो गया पर पत्नी अवला ही रही । वह मानिनी पति के लिए अपने हृदय में सारे उपालम्भ लिए हुए और अपने प्रति दिखाई गई निष्ठुरता और अविश्वास से उत्पन्न खीझ और झुझलाहट लेकर भी पति से

किसी प्रकार का विरोध नहीं कर सकती । वह सदैव अपने नारी-गौरव सतीत्व की रक्षा करते हुए त्याग करती है, उनकी याद में रोती है और मुग्धमन को उन्हीं में लीन किए हुए है ।

यशोधरा गौतम की जीवन-संगिनी है । पति के प्रति श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और त्याग आदि गुणों का उसमें मणिकाञ्चन संयोग हुआ है । उसकी सारी साधना क उद्देश्य पति की कल्याण-कामना है । पति के लिए जीवन के एक मात्र सम्बल पुत्र का भी दान करके वह अपने महान त्याग का परिचय देती है ।

सैद्धांतिक दृष्टि से तो यशोधरा पूर्ण आशा वादिनी और पग पग पर गौतम के निराशावाद का विरोध करती है, पर इस समय भी वह यह नहीं भूलती कि वह सिद्धार्थ की पत्नी है । उनकी आज्ञा का उल्लघन य उनकी इच्छा का विरोध करना भला उसे कैसे सुहाता ? तभी तो वह शुद्धोद ो उन्हें खोजने के लिए मना करती हुई कहती है—

"किन्तु खोज करना उन्हीं के प्रतिकूल है"

उसका सहज विश्वास है कि 'वे अपने दुःख का भागी बनाकर हमें अपना सच्चा आत्मीय सिद्ध कर गए हैं ।' पत्नी के लिए इससे बढ़कर सुख की बात और क्या होगी ? पत्नी के भोले और प्रणयी मन की एक ही साधना और एक ही भावना होती है कि प्रियतम के हृदय में उसके लिए सच्ची आत्मीयता हो । तभी तो वियोग में विक्षिप्त होने पर भी मरना नहीं चाहती, अपने शरीर को जला जला कर भी जीवित रहना चाहती है । उसने स्वामी राहुल का भार उस पर छोड़कर मरने का अधिकार नहीं दे गए । इस थाती को वह जब तक न सौंप दे, तब तक मृत्यु कहाँ ? शुद्धोधन से अन्त में वह यही कहती है कि—

"उनकी सफलता मनाओ तात मन से ।
सिद्धि-लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से ॥"

पातिवृत धर्म की दृढ़ता से वह अवगत है, इसलिए बाधाओं के पर्वत उससे टकरा कर चूर-चूर हो जाते हैं । वह स्वयं कहती हैं—

"यदि मैं पतिवृता तो मुझको कौन भार भय भारी ।"

घर में रहकर ही वह पति का अनुसरण करती है और सारे बहुमूल्य पदार्थों और राजसी वस्तुओं का उपयोग बन्द कर देती है । अन्त में एक आदर्श पत्नी

के रूप में प्रवृत्ति मार्ग की पुष्टि करते हुए अपने प्रियतम से अत्यन्त सरल शब्दों में कहती है—

"आओ प्रिय भव में भाव-विभाव भरें हम।
डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तरें हम॥"

कैसा सुन्दर विश्वास है ?

यशोधरा का मानिनीं रूप भी उग्र पत्नी का रूप धारण नहीं कर पाता। पति की तनिक सी दया-दृष्टि उसके गर्व को समाप्त कर उसके हृदय में त्याग और अनुराग की मंदाकिनी प्रवाहित कर देती है। इस प्रकार उसका सारे क्रिया-कलाप उसे आदर्श पत्नी की कोटि में सहज ही पहुँचा देते हैं। लगता है कि उसके कर्म से ही वधू-धर्म की व्याख्या हो सकती है। गौतम भी तो कहते हैं।

"पाला है तुमने जिसे वही वधू का धर्म।"

जननी यशोधरा—

यशोधरा का पत्निरूप जितना मनोरम और आदर्श है, जननी स्वरूप उतना श्रद्धेय और करुण। प्रारम्भ में वह वेदना से थकी, माँदी, ग्लानि और झुँझलाहट से भरी दयनीय माँ के रूप में हमारे सामने आती है। अपनी अन्त: पीड़ा से व्याकुल यशोधरा का मन राहुल के बाल-क्रन्दन को सुनकर रो उठता है और तब वह खीझ कर उसे चुपकाते हुए कहने लगती है—

'चुप रह चुप रह हाय अभागे'

किन्तु भोला राहुल माँ की इस अप्रत्याशित डाँट को सुनकर जब और अधिक फूट फूट कर रो उठता है तो यशोधरा का मातृत्व पिघल कर बहने लगता है और रोते रोते परवश वह अपना कर्तव्य करुण स्वरों में बतलाने लगती है—

"बेटा मैं तो हूँ रोने को, तेरे सारे मल धोने को।
हँस तू है सब कुछ होने को, तुझको क्षीर पिलाकर लूँगी।"

पुत्र, को परिपुष्ट बनाने की सबसे बड़ी और नि:स्वार्थ मंगल-कामना ममतामयी माँ की ही होती है। तभी तो यशोदा 'कजरी को पियौ लाल जासें तेरी चोटी बढै' का बहाना करके लाड़ले श्याम को दूध पीने के लिए मनाती थी, यशोधरा का 'दुग्ध तन' बेटे को अर्पित है, पति को तो उसने अपना मुग्ध मन ही दे रखा है, इस प्रकार दोनों ओर उसने अपने नि:स्वार्थ कर्त्तव्य को बाँट रखा है।

यशोधरा के लिए राहुल का महत्व इसलिए और भी अधिक है कि वह उसने दारुण दु:खोदधि की पतवार है, उसकी 'मलिन गूदड़ी का लाल' है, यह सोचने पर उसकी मार्मिक वेदना कुछ समय के लिए शांत हो जाती है। राहुल जैसा चंद खिलौना पाकर उसकी व्यथा की सिहरन कुछ कम हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे सागर की लहरें किनारे को थपकियाँ देकर थम जाती हैं। उसका दुख, उसकी खीभ, उसका सुख, उसकी लगन अब राहुल में सीमित हो गए हैं। वह कभी शिशु को पुचकारती चूमती है, कभी खिलाती पिलाती है, कभी प्यार करती है। अब उसे गल गल कर पालती पोसती और बड़ा करती है। शिशु की मधुर किलकार निहार कर वह विस्मृत हो जाती है खोजती है, भूल जाती है, अपने को, अन्तर्जगत को, सम्पूर्ण वेदना को। उसका मातृत्व हमें सूर की यशोदा की याद दिलाता है, जब वह कहती है—

"ठहर बाल गोपाल कन्हैया, राहुल राजा भैया।
कैसे धाऊँ पाऊँ तुझको, हार गई मैं दैया॥"

शिशु के साथ इस खेलकूद में माँ यशोधरा के दिन व्यतीत होते हैं। राहुल में वीरता, उत्साह साहस और विजय की भावना भरने ने लिए क्षात्राणी माँ सतत प्रयत्न शील है। उसे यही सन्तोष है कि 'गोपा गलती है पर उसका राहुल तो पलता हूँ'।

राहुल जब कुछ बड़ा हो जाता है तो वह पक्षियों आदि के नाम जानने के लिए माता से आग्रह करने लगता है, माँ उसे तुरन्त पी-पी का अर्थ दूध पीना बतलाती है. कहानी भी वह इसी शर्त पर सुनाने को तैयार होती है कि वह दूध पीले। बेटे के अनेक प्रश्नों का उत्तर वह इसी ढंग से देती है कि उसमें सुन्दर गुणों का उदय हो। इस प्रकार 'माँ संतान की पहली गुरु है' वाली उक्ति को चरितार्थ करती है। कुछ समय बाद राहुल प्रश्नों की झड़ी लगा देता है, उसे क्या मालूम कि मां पर कैसी बीत रही है और उसके प्रश्न उसकी टीस को कितना उभार रहे हैं। परन्तु, माँ पुत्र की किसी जिज्ञासा को दबाना उसके लिए अहित-कर समझती है, अतः उसके प्रत्येक प्रश्न का सही उत्तर देने का प्रयत्न करती है। पर कुछ अटपटे प्रश्नों का उत्तर जब वह नहीं दे पाती तो प्रियतम का स्मरण कर कहने लगती हैं—"राहुल पलकर जैसे तैसे

करने लगा प्रश्न कुछ वैसे, मैं अबोध उत्तर दूं कैसे ?
वह मेरा विश्वासी ।"

माँ की कोमल भावना और विश्वास मानों सघन होकर इन पंक्तियों में समा गया हो । पुत्र की स्मृति तीव्र करने के लिए कभी कभी उसकी परीक्षा लेना, कहानी सुनाते सुनाते उसकी न्याय-बुद्धि का नापना उसके नित्य कर्म से हो गए हैं । मातृ भूमि के प्रति परम अनुराग रखने की वह उसे सदैव शिक्षा दिया करती है, स्वावलम्बन पाठ तो उसने पुत्र को रटा दिया है ।

धीरे धीरे राहुल किशोर अवस्था में आ जाता है । अब उसे माँ की पीड़ा का अनुभव होने लगता है और वह उसे दूर करने की चिन्ता करने लगता है, पर माता गोपा अब भी उस पर अपने आंचल की छाया करके उसे कंधे पर बैठाकर बहलाने का प्रयत्न करती है, परन्तु आखिरकार उसकी वेदना राहुल के सम्मुख प्रगट ही हो गई । और वह उसके निवारण के लिए मन ही मन अनेक संकल्प विकल्प करने लगा ।

इस प्रकार अपने स्तन-पान से राहुल को स्वस्थ बनाकर, सद्‌गुण, सदाचार, न्याय, वीरता, साहस विजय और मातृभूमि के प्रेम की सम्पूर्ण शिक्षाएँ प्रदान कर, मोक्ष-प्राप्त भगवान बुद्ध के ग्रहण करने योग्य उसे बनाकर माँ गोपा सहज ही आदर्श जननी के पद को प्राप्त कर लेती है । कहना न होगा कि गोपा ने अपना सम्पूर्ण जीवन पत्नी और माता के शाश्वत कर्त्तव्य-पालन में गला दिया । क्या गौतम भी पति और पिता का कर्त्तव्य पालन कर सके ? यहीं नारी पुरुष से आगे निकल जाती है, फिर नारी का महत्व न्यून क्यों ? यही ग्लानि प्रश्न के रूप में कवि के हृदय में हाहाकार कर उठती है और वह अन्त में व्याकुल होकर नारी के इस दयनीय रूप को अपनी दो पंक्तियों में व्यक्त कर कराह उठता है—

"अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥"

प्रश्न—'मेरी वैष्णव भावना ने तुलसीदल देकर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रखा है ।' इस कथन के आधार पर गुप्तजी की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए । (Imp)

अथवा

यशोधरा काव्य पर गुप्तजी कीवैष्णव भावना का प्रभाव कहां तक पड़ा है ?

उत्तर—भारतीय संस्कृति का विशाल भवन धर्म की नीव पर खड़ा किया गया है, उसका आधार भौतिक नहीं है। सस्कृति के सुस्पष्ट चित्रों को साहित्य अमरत्व प्रदान करता है, भारतीय साहित्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है ! धार्मिक अभिव्मक्ति इसकी विश्वसाहित्य से पृथक अपनी निजी विशेषता है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य धर्म से अनुप्राणित है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं धर्म के अनन्य रूपों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य में ज्ञान और भक्ति की गम्भीर अभिव्यक्ति मिलती है।

वैष्णव सम्प्रदाय ने समाज के प्रति एक उदार दृष्टिकोण का प्रचार किया था। ज्ञान, योग, क्रिया और भाव इन चार को साधन मानकर भारत में जीवन के बन्धनों से मुक्ति पाने के प्रयत्न किए गए। ज्ञान-परम्परा को उपनिषदों से प्रेरणा मिली। बौद्ध तथा जैन साधकों में भी ज्ञान का महत्व बढ़ा, अतएव ब्राह्मण, जैन, बुद्ध तीनों में ज्ञान की ही प्रधानता रही। ज्ञान में बुद्ध या प्रज्ञा द्वारा जगत पर विचार किया जाता है और जीवन के भावनात्मक जगत का नाशकर शुद्ध ज्ञान में स्थित होना ही साधना का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। योग में प्राण वायु पर शासन करके चित्त-निरोध किया जाता है, इससे आत्मा अपने रूप में स्थित हो जाती है। क्रिया के द्वार सिद्धी प्राप्ति तब होती है जब मन को तटस्थ रखकर कोई क्रिया की जाय, इसकी अन्तिम अवस्था में क्रिया टूट जाती है और शुद्ध ज्ञान रह जाता है। गीता तथा पुराणों में भाव को भी मुक्ति पाने का साधन स्वीकार कर लिया गया। भाव-साधना का अर्थ है कि ईश्वर को किसी भाव का विषय बनाकर उसकी उपासना की जाय जैसे पति, पिता, पत्नी, प्रेमिका, भ्राता, स्वामी आदि। वैष्णवों ने ईश्वर को साकार रूप में भी स्वीकार किया और उसके अनेक अवतारों, अनेक लीलाओं का वर्णन किया। साकार ब्रह्म के उपासकों का विश्वास है कि ईश्वर धरती पर आकर मनुष्य की तरह सारे कार्य कर सकता है, वह हमारे प्रेम के वशीभूत होकर हमसे मिलने आ सकता है।

ईश्वर को प्रेम का विषय बनाने का प्रचार विशेषकर पुराणों ने किया। दूसरी ओर बौद्धधर्म केमहायन सम्प्रदाय ने भी गौतम को अवतार मान लिया और बुद्ध का वर्णन उपानिषदों के ब्रह्म के रूप में होने लगा। यही नहीं, इस सम्प्रदाय ने गौतम के अतिरिक्त अन्य अनेक बुद्धों की सत्ता को स्वीकार किया है और साथ ही पाँच ध्यानी बुद्ध और पाँच बोधिसत्वों का भी आविष्कार का भी कर लिया। इन पाँच से अनेक देवी देवताओं की कल्पना करली गई। इस प्रकार ध्यानी बुद्धों, बोधिसत्वों, देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों आदि के नाम और रूप की उपासना महायान बौद्ध मत में उसी प्रकार चल पड़ी जिस प्रकार पौराणिक मत में चल रही थी।

हम कह चुके हैं कि वैष्णव धर्म में माना गया था कि ईश्वर अवतार लेता है, वह मनुष्य की तरह ही लीला करता है, वह प्रेम और उपासना से प्राप्य है, इसमें अपनी मुक्ति के साथ अन्य जीवों का उद्धार करना भी आवश्यक है। भगवान की दया से ही भक्ति मिलती है, आदि। इसी प्रकार महायानी बौद्ध बोद्धधर्म में मान लिया गया कि बुद्ध अवतार लेते हैं, अवतार अनेक हुए हैं, वह मनुष्य के उद्धार के लिए करुणा प्रगट करते हुए अनेक लीलाएँ करतेहैं, वह प्रेम से ही प्राप्त होते हैं, उनके नाम और रूप की उपासना सम्भव है। बुद्ध और उसके सभी अवतार करुणा के महान स्रोत हैं। स्वयं बुद्ध की उक्ति है—

"अपने से पहले अपनों की सुगति .गौतमी गीता है।"

उपयुक्त विवेचन से एक बात प्रगट हों जाती है कि वैष्णव धर्म तथा महायान धर्म में काफी साम्य मिलता है, तभी ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार कर लिया। महायानी बौद्ध धर्म की प्रमुख विशेषता लोक कल्याण की भावना है, वह जीवमात्र पर अपनी सम्पूर्ण करुणा उडेल देता है। यही दया का भाव वैष्णवों में भी मिलता है। उनके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित है—

"वैष्णवजन तो तेई कहिए, जे पीर पराई जानै"

अस्तु, वैष्णवों व महायानियों की इसी एकता के कारण वैष्णवों ने गौतम बुद्ध को ब्रह्म का एक रूप स्वीकार किया है। एकता और 'भक्ति की यही भावना तुलसी की पावन वाणी को स्पर्श करती हुई वैष्णव धर्म की रामाश्रमी 'भक्ति

शाखा के नवीन प्रतीक मैथिलीशरण गुप्त में आ सिमटी है। वह यशोधरा के वैदिक चोले में वैष्णव धर्म का तुलसी और गंगाजल लेकर उसे चेतन बताने की चेष्टा करते हैं। कवि की अनुभूति बड़ी गहरी है वह अपने राम को पहचान ही लेता है, चाहे वे किसी वेश में आवें। इसीलिए सिद्धार्थ कवि के राम से भिन्न नहीं हैं। भक्त राम को सभी वेशों में स्वीकार कर लेता है चाहे वह वेणु के साथ हों, चाहे धनुष वाण के साथ और चाहे हों मधुकरीपात्र के साथ। मंगलाचरण की पंक्तियाँ कवि की इसी प्रवृति पर प्रकाश डालती हैं। और तभी वह मुक्ति के स्थान पर भक्ति की स्पृहा करता है।

राम और बुद्ध की एकता पर कवि पुनः जोर देते हुए कहते हैं—

"हे राम! तुम्हारा वंश जात,
सिद्धार्थ तुम्हारी भाँति तात।
घर छोड़ चला यह आज रात,
आशीष उसे दो, लो प्रणाम।"

महायान मत व वैष्णव धर्म में ज्ञान का भी बहुत महत्व है। वैष्णव धर्म में सबसे अधिक महत्व तो भक्ति को ही दिया गया, परन्तु ज्ञान को भी आवश्यक माना गया है। गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म का सुन्दर सामंजस्य किया गया है। इसी के आधार पर वैष्णवों ने भक्ति के ज्ञान व कर्म के साथ ही स्वीकार किया। वैष्णव भक्त के लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं कि वह शुद्ध ज्ञान से जगत पर विचार करता रहे, भगवान के प्रेम में लवलीन रहे और निष्काम भाव से कर्म करता रहे। अतः यशोधरा का मन पर नियन्त्रण और मनन पर जोर देना वैष्णव साधना के अनुकूल ही है—

"करते हैं साधन विजन में वे तन से।
सिद्ध लाभ होगा मन से मनन से॥"

'यशोधरा' में यशोधरा और सिद्धार्थ भक्ति और ज्ञान का क्रमशः प्रतिनिधित्व करते हैं। एक का पक्ष राग का है और दूसरे का विराग का। गौतम संसार को निस्सार समझते हैं यह ज्ञान का पक्ष है। यशोधरा भक्ति के लिए शारीरिक जीवन के प्रति आसक्ति को प्रधान मानती है। भक्त जन्म-जन्मान्तरों में सदैव सशरीर भक्ति करने की याचना करता है। सिद्धार्थ ने जीवन में नश्वरता देखकर

'सर्वंशून्यं सर्वक्षणिक' इस जगत पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने यौवन की उमंगों पर वृद्धावस्था का तुषरापात देखा है। उनका विचार है कि 'सड़ने को हैं वे अखिल आम' इसी से वे क्षण-भंगुर भव को राम राम कहकर त्याग देना चाहते हैं, वे मृत्यु को जन्म के साथ एक बार तो अनिवार्य मानते हैं, पर बारबार के आवागमन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यशोधरा के के लिए यह नश्वरता एक विश्वसनीय विकास है। वैष्णव भावना के अनुसार वह मुक्ति और भुक्ति दोनों का तिरस्कार करती है—

"निज बन्धन का सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ,
कह मुक्ति भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ।"

उसका दृढ़ विवास है कि "मैं विफल तभी जब बीज रहित हो जाऊँ।" कवि की दृष्टि में निर्वाण और मुक्ति प्रकृति के विरुद्ध हैं। चन्द्र और सूर्य भी तो मुक्त नहीं हैं, वे भी आवागमन के चक्र में घूम रहे हैं—

"ये चन्द्र सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं,
ओझल हो होकर हमें दृष्टि आते हैं।"

अतः वैष्णव धर्म की अनुयामिनी होने के कारण यशोधरा नियति और कर्म-वाद में विश्वास करती तथा अकर्मण्यता और पलायनवाद का विरोध करती हैं, साथ ही स्वस्थता के लिए शम-दम की अनिवार्यता स्वीकार करतो है।

यदि हम में अपना नियम और शम-दम है।
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति जहाँ संयम है।
नव-जीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है!

वैष्णवों के अनुसार गुप्त जी यशोधरा के द्वारा निष्काम भाव से कर्त्तव्य करना हीं श्रेष्ठ समझते हैं सन्यास और विरक्ति नहीं—

भोगें इन्द्रिय जो भोग विधान-विदित है
अपने को जीता जहाँ वहीं सबजित है
निज कर्मों की ही कुशल सदैव मनाऊँ।

भोग और कर्म का त्याग मन से ही हो सकता है तन से नहीं, इसलिए यशोधरा सर्वभूत हित के लिए बार-बार जन्म लेने का ही उपदेश देती है—

'संसार हेतु शत वार सहर्ष मरें हम।'

वह तो केवल यह चाहती है कि—

'भव भावे मुझको और उसे मैं भाऊँ।'

उसने भक्ति को सच्चे हृदय से ग्रहण किया है। भक्ति का प्रधान लक्ष्य आराध्य से प्रेम है, भक्त मुक्ति कों नहीं चाहता। 'कवि की वैष्णव भावना इतनी तीव्र है कि वह अबला जीवन कहानी' कहने में 'आँचल से दूध' और 'आँखों में पानी' में अपना हृदय खो बैठा है। वैष्णवों के अनुसार जब धर्म की हानि होती है और पाप बढ़ जाता है तो भगवान अवतार लेकर पाप का नाश और धर्म की स्थापना करते है। कवि बुद्ध को भी भगवान का अवतार मानता है, नास्तिक नहीं। इसीलिए भक्त के स्वर में यशोधरा कहती है—

उस समाधि-बल की बलिहारी
अच्छी मैं मारी की नारी
पूजा तो कर सकूँ तुम्हारी
धुलूँ चरण धोकर ही

भक्ति की यही, महिमा है कि सेवा से ही वह मुक्ति प्रदान कर दता है। वैष्णव भक्तों का विश्वास है कि सारी घटनाओं के मूल में ईश्वर की इच्छा होती है, अतएव वे सब कुछ उसी पर छोड़ देते हैं। उसका विधान मंगलमय है। इसलिए अपने 'सोने के संसार को मिट्टी में हुआ देख सोचती है कि भगवान इसमें भी कुछ तेरा भेद ही होगा'।

भगवान जब प्रेम का विषय बनता है तो भक्त प्रेम में उससे कभी रूठता है कभी भर्त्सना करता है, परन्तु फिर भी उसके अन्तर में स्नेह रहता है क्रोध नहीं। यशोधरा भी बुद्ध भगवान के प्रति ऐसे ही भाव दिखा रही है। और अन्त में—'पधारो भव भव के भगवान' का सम्बोधन करके उनका स्वागत करती है।

ज्ञान, अहिंसा तथा करुणा के सिद्धान्तों और कठिन योग के कारण कवि गौतम को अनात्मवादी न कहकर ऋषि ही मानता है और उनके मुख से वेद-मन्त्र कहलवाता है—

'तमसो मा ज्योतिर्गमय
असतो मा सद्गमय'

यह गुप्त जी के हृदय की वैष्णव भावना ही थी, जिसने उन्हें उपेक्षिताओं के उद्धार की प्रेरणा प्रदान की। वैष्णव ही दूसरे की पीड़ा को समझ पाता है, चाहे वह वाल्मीकि हो चाहे तुलसी। तुलसी की इन पंक्तियों में यही भाव व्यक्त है—

"परहित सरिस धरम नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई॥"

तभी तो कबीर जैसा व्यक्ति भी वैष्णव की प्रशंसा कर उठता था। वैष्णव भेद-भावों की चिंता न कर सब पर प्रेम की वर्षा करता है। उसका हृदय सदैव भाव- गद्गद् रहता है। किसी के दुःख को देखकर रो पड़ना उसके लिए स्वाभाविक है, दूसरे के हित के लिए ही उसका जीवन होता है। यशोधरा के दुख में इतनी संवेदन शीलता, सहानुभूति, बुद्ध भगवान के प्रति यशोधरा की इतनी भक्ति, जगत के लिए अपार करुणा और उदारता के भाव, भेद-भाव, जाति-पाँति के ऊपर उठकर प्राणिमात्र के लिए समता और ममता का उपदेश, यह सब वैष्णव भावना की प्रबलता के ही प्रमाण हैं। एक भावुकभक्त होने से ही उनके पात्र गोतम, यशोधरा, शुद्धोदन अत्यधिक भावुक हो सके हैं। यशोधरा का आक्रोश और आलोचना इसी कारण कटु नहीं हो पाई क्योकि वह वैष्णव भक्त का सृजन है। वह तो सब कुछ भूलकर अन्त में भगवान के सम्मुख पुत्र सहित निछावर हो जाती है, भक्त को इस आत्म समर्पण में ही सुख और सन्तोष मिलता है। यशोधरा भी कृत्यकृत्य हो जाती है—

"कृत कत्य हुई गोपा, पाया यह योग भोग अब जा तू।
आ राहुल बढ़ बेटा, पूज्य पिता से परम्परा पा तू॥"

प्रश्न—६. 'यशोधरा का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है" यशोधरा के विरह की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इस युक्ति का विवेचन कीजिये!

उत्तर—विरह एक ऐसा शब्द है जिसमें चेतन अस्तित्व की सकल सम्वेदना बिध बन गई है। भाग्वत के दशम् सकंध वर्णित राधा के अश्रु के एक बिन्दु

सूर के द्वारा सागर के रूप में लहरा उठा फिर उसमें जो शाश्वत ज्वार भाटे उठे तो राधा के नयन कोरों में प्रवाहित हुए आँसुओं से लगा कि समस्त सृष्टि ही डूब जायगी। भावुक कलाकार का प्राण—सम्वेग विरह की ताल अनुभूति में जी भर कर तैर उठता है उसकी अभिव्यक्ति स्वतः मुखरित हो उठती है। क्रौंच के निधन पर चिरंतन विरह व्यथा की टीस से सिसकती हुई क्रौंची की करुण आँखों को निहार कर आदि कवि का प्राण सम्वेदना में डूब कर अनुष्टुप छंद के रूप में स्वयं ही तो रो उठा था और वही विश्व का आदि गीत वन गया। कदाचित पंत ने कुछ ऐसी ही अनुभूति पाकर ये पंक्तियां लिख डाली होगी—

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आखों से चुपचाप,
वहीं होगी कविता अनजान।"

सुख की अपेक्षा दुःख और संयोग की अपेक्षा वियोग मानव की हृत तंत्री को अधिक झंकृत करता है इसीलिए शैले को अपने करुण गीत सबसे मीठे लगे—

"Our sweetest song are those which pour forth sad-est tho ught.

वस्तुतः विरह प्रेम की कसौटी है जिस पर कस जाने पर प्रेम कंचन की भाँति खरा वन जाता है। हमारे आचार्य ने तभी तो कहा है—

"न विना विप्रलम्भेनः संयोग पुष्टिभश्नुते्"

वियोग में संयोग की पुष्टि होती है वह प्रेम की जागृत अवस्था है जबकि मिलन उसकी सुस्पतावस्था कही गई है।

"मिलन अंत है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की शाश्वत गति है और सुसुति मिलन है।"

मैथलीशरण भी कहते हैं—

"होता है सुख का क्या मूल्य जो न दुःख रहता?
प्रिय हृदय सदय तपस् ताप क्यों सहता?

मेरे नयनों से नीर न यदि यह वहता ।
तो शुष्क प्रेम की वात फिर कौन कहता ?"

स्त्रियों का भाव-जगत अधिक समृद्ध होने के कारण, साहित्य में स्त्रियों का विरह वर्णन अधिक हुआ है ! सूर की राधा, तुलसी की सीता, जायसी की नागमती, हरिऔध की राधा, प्रसाद की श्रद्धा और गुप्त की उर्मिला तथा यशोधरा, हिन्दी साहित्य की मुख्य विरह नारियाँ है। रीतिकाल और छायावाद में भी विरह-वर्णन में कवियों ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है। लगता है एक ही नारी अपने अमृत अश्रुओं से काव्य-उपवन को सदा सर्वदा सिंचित करती रहीं हैं वही कभी राधा, कभी सीता कभी भगवती कभी यशोधरा के रूप में कवियों द्वारा वर्णित होती रही है। सहृदय कवियों की सारी करुणा जैसे नारी के अश्रु विन्दु के रूप में प्रवाहित होकर ममतारूपी मानवता की हृदय भूमि को गीला करती है। वस्तुतः प्रेम एक उदात्त वृति है उसका विश्व समाज के साथ सबसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है, इसीलिए प्रेम का वर्णन सबसे अधिक सदा से करते आये हैं और करते रहेंगे। गुप्त-जी ने यशोधरा में इस भावना को अच्छी तरह पहिचाना है।

यशोधरा में नारी की विरह भावना का चित्रण प्राचीन पद्धिति पर अधिक और नवीन पद्धिति पर कम हुआ है। यशोधरा के विरह वर्णन की प्रथम विशेषता है। घनञ्जय के अनुसार प्राचीन पद्धिति में विरह की दस अवस्थायें मानी गयी हैं। इन दस अवस्थाओं के अतिरिक्त विरहावस्था के चित्रण में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण होता है। विरह का यह चित्रण विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आता है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, उद्वेग, गुणकथन, प्रलाप, व्याधि, जड़ता, उन्माद, मरण, ये दस अवस्था विरह के दस सोपान कहे जा सकते हैं। जिस काव्य में इन अवस्थाओं का क्रमशः वर्णन मिलता है। वह उत्कृष्ट काव्य कहलाता है। यह है विरह की प्राचीन कसौटी।

उपर्युक्त कसौटी पर 'यशोधरा' काव्य अत्यन्त खरा उतरता है। गौतम तथा यशोधरा में शृंगार का स्थाई भाव रति पूर्णरूपेण दृढ़ हो चुका था। गौतम के वन चले जाने से संयोग समाप्त हो जाता है अतः यही विप्रलम्भ की अवस्था निश्चत रूप से उपस्थित है। एक बात और, यशोधरा काव्य में पति विषयक

रति का वर्णन ही किया गया है। यशोधरा में प्रिय मिलन की आशा सदैव रहती है यद्यपि वह जानती है कि उसका पति प्रेमी के रूप में अब शायद ही प्राप्त हो पर सन्यासी के रूप में अवश्य मिल सकता है। अतः यशोधरा की आशा में प्रोषित पति का नायिका के समान उमंग नहीं दिखाई पड़ती। इसी लिये उसे करुणा का विषय मान लिया जाता है परन्तु शास्त्रीय भाव से यशोधरा का भाव रति है। यह दूसरी बात है कि यशोधरा के वर्णन में कवि ने उसकी विरहावस्था का करुण चित्रण किया है।

यशोधरा ग्रन्थ के आरम्भ में पति वियुक्ता है और अन्त तक रहती है। अन्त में भी उसे जीवन भर वियोग ही सहना पड़ा है इसलिये विरह की सभी अवस्थायें इसके सांगोपांग मिल जाती है।

अभिलाशा—पति से वियुक्त होने पर नारी की सबसे महत्वपूर्ण अभिलाषा प्रिय मिलन की होती है। शरीर द्वारा संयोग की इच्छा अभिलाषा कहलाती है। यशोधरा की अभिलाषा अनेक स्थलों पर व्यक्त की गई है—

"रखते हो तुम प्रीति तो धारण करो प्रतीति"

तथा

"तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम"

अथवा

"धीरज धर बेटा! अवश्य उन्हें हम एक दिन पायेंगे'

यहाँ पुर्नमिलन की अभिलाषा स्पष्ट है।

चिन्ता—जिस अवस्था में प्रयत्न करने पर भी संयोग न हो उसे चिन्ता कहते हैं। इसमें इष्ट और अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति और अप्राप्ति की कल्पना से व्यंग्यता बढ़ती है। यशोधरा में प्रियमत से मिलने का प्रयत्न नहीं दिखाया गया है। शुद्धोधन जब उन्हें खोजने की इच्छा प्रगट करते हैं तब भी यशोधरा रोक देती है इसलिये यह अवस्था व्यापक रूप से यशोधरा में मिलती है फिर भी—

"मरने से बढ़कर यह जीना
अप्रिय आशंकायें करना
भय खाना हा! आंसू पीना"

—आदि में चिन्ता के सुन्दर स्वरूप मिलते हैं साथ ही वह प्रियतम के कठिनाइयों के विषय में भी चिन्ता करती दिखाई गई है—

"देखा है रजनी में सजनी मैंने उनका तपना
दया भरी पर शोणित सूखा
वर्ण झांवरा होकर रूखा
पैठा पेट पीठ में भूखा
आया मुझे बिलखना।"

स्मृति—विरहणी की तीसरी अवस्था स्मृति की होती है, संयोग की दशा का स्मरण करना तथा आतुरता के साथ प्रतिक्षा करना इसमें दिखलाया जाता है। *प्रिय के अभाव में विरहणी का मन उन धाराओं के चारों ओर केन्द्रित हो जाता* है जिन्होंने उसके जीवन को संयोगवस्था में मधुर बनाया था। यशोधरा संयोगावस्था के मधुर क्षणों की याद करके अपनी वेदना मयी बेला को भुलाने का असफल प्रयास करती है। कभी भाव मन गौतम के शौर्य और पराक्रम से प्रभावित होता है और कभी उनकी उदारता और करूणा उसे अभिभूत कर देता है—

"मेरे सीधे पिता ने सबसे धीर वीर वर चाहा"

अथवा

"रोहणी हाय! यह वह तीर बैठते आया जहाँ वह धर्म
ध्रुव धीर।
में लिये रहती विविध पक्वान भोजन खीर।
—वे चुगाते मीन, मृग, खग, हंस, केलीकीर।

गुणकथन—समृति से अभिन्न सम्बन्ध यह दया रखती है। प्रिय की स्मृति के साथ उसके गुणकथन प्रारम्भ हो जाते हैं। विरहिणी अपने दग्ध हृदय को सात्वना देती रहती है! यशोधरा प्रियतम के साथ बीते हुए मधुर क्षणों का स्मरण करते-करते शौर्य, ज्ञान, रूपरंग आदि का उल्लेख करने लगती है—

"गिरे प्रतिद्वंदी नंदार्जुन, नागदत्त जिस हय से
वह तुरंग पालित कुरंग सा नत हो गया विनय से।"

उद्वेग—विरह वेदना का आधिक्य और दग्ध हृदय की हूक विरहणी को उद्योगशील बना देती है। यह व्याकुलता और उदासी की अवस्था है

यशोधरा को इस अवस्था में पहुँचने पर सृष्टि अप्रिय लगने लगयी है उसके हृदय की घबराहट और अनिश्चितता स्पष्ट प्रगट होने जगती है—

"साखि वे कहाँ गये हैं ?
मेरा वांया नयन फड़कता है।
पर मैं कैसे मानू देख यहाँ पर हृदय धड़कता है।"

प्रलाप—बिना सोचे विचारे वक उठने को प्रलाप कहते हैं। सामान्य रूप से विरह की सभी उक्तियाँ प्रलाप ही हैं क्योंकि विरह में सोच विचार रह ही नहीं जाता और बिना सोचे विचारे वक उठने को ही प्रलाप कहते हैं। किन्तु शास्त्रीय ढंग से यशोधरा में प्रलाप अवस्था नहीं मिलती है।

व्याधि—विरह की तीव्र वेदना के क्षण विरहणी को व्याकुल ही नहीं करते अपितु उसके शरीर को भी क्षीण बना देते हैं। राहुल यशोधरा के संवादों में व्याधि का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जब राहुल यशोधरा के पहले चित्र की तुलना विरहावस्था के चित्र से करता है—

"यह मूर्ति सुख में भी संकुचित है
और तू दुःखनी होकर भी गौरव शालिनी""क्या
—इस अवस्था परिवर्तन पर तुझे खेद है ?

तथा

"अप्रिय आंशकायें भरना भय खाना हा आँसू पीना
कहा जाय यह दीना हीना।"

जड़ता—चेतना शून्य हो जाने की अवस्था जड़ता कहलाती है। उसे मूर्छा भी आने लगती है। अतः उसे संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। शुद्धोधन के शब्दों में यशोधरा की यह अवस्था प्रगट होती है—

"मूर्छित है हाय ! मेरी भसना यशोधरा"

तथा

"सिहनी सी कसनों में वियोगनी सी शैलों में"

× × ×

"जाती तभी और उन्हें खोजलाती मैं !"

उन्माद—उन्माद पागलपन की अवस्था को कहते हैं। इसमें विरहणी अपने आपको, अपने सम्बधियों को पहचानने में असमर्थ हो जानी है। वह रोते-रोते अथवा गाते-गाते कोई ऐसा काम कर बैठती है जो अभीष्ट नहीं होता। यशोधरा—वेटा आ मेरी छाती से लग जा 'कहकर उसे वल पूर्वक दवा लेती हैं और वह ओंह २ कर उठता है। इससे अधिक कवि ने यशोधरा के उम्माद का चित्रण नहीं किया! शायद इसलिये कि उसे यशोधरा के धैर्य की रक्षा करनी थी।

मारण—मारण का वर्णन 'यशोधरा' में नहीं है 'यशोधरा' में सिद्धार्थ ने यशोधरा से आकर अधिकार छीन लिया था इसलिए मारण की अवस्था आने पर भी उसने उसे वर्णन नहीं किया।

इस प्रकार कवि ने प्रायः सभी अवस्थाओं को यशोधरा में दिखाया हैं। यद्यपि वह शास्त्रीय कसौटी पर पूरी तरह नहीं चढ़ती है परन्तु फिर भी उसकी अनुभूति में कोई वाधा नहीं पड़ती। कवि ने यशोधरा के चरित्र पर अधिक ध्यान दिया हैं। दुःख में धर्म भरी वाणी वही बोल सकता है जिसके हृदय में उस व्यक्ति से कहीं अधिक गहरा घाव होता है, जो परिस्थिति के जरा से झटके से रो पड़ता है।

यशोधरा के विरह का वास्तविक महत्व यह नहीं है वल्कि कुछ अन्य ही वातें हैं जो उसके विरह को विशिष्ट स्थान पर पहुँचा देती है। प्रथम यशोधरा अपने विरह काल में ही वासनात्मक प्रेम से शुद्ध प्रेम की ओर वढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। वस्तुतः यह प्रेम की अन्तिम दशा है। प्रेमी का चित्त यहाँ प्रेम पात्र में लीन हो जाता है और वासना की अन्धता शांत हो जाती है।

द्वितीय, यशोधरा एक ओर तो मृत्यु के समीप पहुँच जाती है और दूसरी ओर पुत्र के लिये जीवन की रक्षा का प्रयत्न करती है। वात सुख और विरह दोनों की एक साथ रक्षा करने में यशोधरा की वेदना और भी अधिक सघन हो उठती है। यह विरह संताप पाठक के मन में खलवली मचा देता है। राहुल जब कहता है—

"गाती हैं मेरे लिये रोती है उनके अर्थ,
हम दोनों के बीच तू पागल सी असमर्थ।"

तब यशोधरा की उक्ति सुनिये—

"रोना गाना यही जीवन के दो अंग,
एक संग मैं ले रही दोनों का आनन्द ।"

तृतीय, यशोधरा का विरह निस्वार्थ था साथ ही पुत्र तथा पति दोनों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को उसे निभाया है। यही कारण है कि यशोधरा का विरह अधिक मार्मिक हो उठा है। प्रेम भावना के विकास में वात्सल्य की रक्षा भी एक सोपान थी! यशोधरा ने उसे भी पूरा कर दिया!

कवि ने इस दृष्टि को पति प्रेम विह्वला तथा राहुल जननी, यशोधरा के ये दो रूप प्रस्तुत किये हैं परन्तु विशेषता यह है कि राहुल जननी के पुत्र प्रेम को पति प्रेम का उद्दीपन बनाया गया है अतः यशोधरा के हृदय में पति प्रेम का सागर उमड़ पड़ता हैं। आंसू छलक उठते हैं परन्तु पुत्र को उनकी यह वेदना प्रगट न हो इसलिये उसे अपनी हिचकियों और आँसुओं पर नियन्त्रण रखना पड़ता है।

कितनी विवशता है कि वह जी भर रो भी नहीं सकती। यशोधरा के विरह में प्रेम का यह छंद अद्वितीय सौन्दर्य भर देता हैं उसकी प्रेम भावना को और भी अधिक उदात्त बना देता है।

चतुर्थ, यशोधरा की सारी चेतना पति में इतनी अधिक तल्लीन हो उठती है कि उसे प्रकृति के कण कण में पति के दर्शन होने लगते हैं। इस प्रकार प्रकृति के कारण उसके और पति के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है! वस्तुतः प्रेम की यह अद्वैत दशा है—

"उनकी शांति काँति की ज्योत्सना जगती है पल पल में,
शरद ताप उनके विकास का सूचक है थल थल में।"

यह प्रेम रीतिकालीन काव्य में नहीं मिल सकता है। इस उच्च भाव भूमि की कल्पना आधुनिक कवि ही कर सकता था। यहाँ प्रकृति भी यशोधरा के साथ एकाकार हो जाती हैं, मानों प्रकृति भी पति में तन्मय हो गई है। यशोधरा के विरह का यह रूप महान् है।

पाँचवें, यशोधरा का वियोग अत्यधिक करुण हो उठा है। उसमें यशोधरा का आर्तनाद ही सर्वत्र सुनाई पड़ता है। पति के लिए जैसी त्यागमयी मनोवृत्ति यशोधरा की मिलती है वैसी और किसी की नहीं। वह पति का अनुकरण करके

अपने केश काट डालती है क्योंकि अपने वाह्य शृङ्गार की अपेक्षा वह अपनी चार-चूड़ियों, सिन्दूर विन्दु और गोदी के लाल को अधिक महत्व देती है, भारतीय पत्नीत्व के उभार में उसका विरह कंचन जैसा दमकने लगता है।

छठे, यशोधरा का विरह कोरी भावुकता पर आधारित नहीं है। उसमें बराबर विचारशीलता मिलती है। वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग है, समय समय पर अपने जीवन पर, जगत की गति पर और पति पुत्र के विषय में विचार करती है। यशोधया का यह प्रौढ़ चिंतन उसके विरह को और भी अधिक मूल्यवान बना देता है। वह बुद्धि और भाव पर समान संयम रखती है। उसका समर्पण अन्ध समर्पण नहीं है। प्रकृति के कण कण में पति के दर्शन करने की क्षमता रखते हुए भी वह अपने नारीत्व के प्रति पूर्ण जागरूक है। उसका आकर्षण शरीर का नहीं व्यक्तित्व का है, उस व्यक्तित्व का अनादर वह कैसे सह सकती है, अतः रात दिन विरह-दुख से पीड़ित यशोधरा पति से स्वयं जाकर मिलना नहीं चाहती, इस प्रकार अपने सम्मान की रक्षा करती है। यह विचारशीलता, गौरव और स्वाभिमान भी ऐसा यशोधरा में ही दिखाई पड़ती।

सातवें, यशोधरा के समर्मण का अर्थ बहुत व्यापक है, केवल दासता नहीं। वह अपने को प्रेमिका और पत्नी का पद देती है, क्रतिदासी का रूप नहीं। इसलिए उसका समर्पण उसके गौरव का एक सहायक तत्व बन गया है—

"बस, मैं ऐसी ही निभजाऊँ।
राहुल, निज रानीपन देकर तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ, तो, इस परवश मनको बहलाऊँ।"

यशोधरा की वेदना हृदय का विस्तार करने के लिए है, आत्म-कल्याण के साथ लोक-कल्याण के लिए है। इससे उसकी सहानुभूति व्यापक हो जाती है। उसकी दृष्टि में आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण दोनों के लिए दुःख का सहन करना अनिवार्य है—

यदि उमंग भरता न आर्द्र के ओ तू अन्तर्दाह।
तो कल कल कर वहाँ निकलता, निर्मल सलिल प्रवाह
सुलभकर सबको मज्जन पान
सदन का हँसना ही तो गान।

अतएव यशोधरा का विरह गौतम की साधना से कहीं अधिक मानवीय है, क्योंकि उसमें भावना, जीवन, लोक और आत्म-कल्याण का निषेध नहीं है। अपनी विरहावस्था में यशोधरा ने सोचा कि मन को भाव से पूर्ण करना चाहिए, इच्छा पर पूर्ण विजय यही है कि कर्म को हम निष्काम भाव से करते रहें। यह विरह जन्य अनुभूति ही उसके विरह को महान बनाती है और उसे देवी की भाँति पवित्र और पूज्य बना देती है।

आठवें, यशोधरा वियोग में जिस ममता की रक्षा करती है, संसार का वही सर्वस्व है। गौतम के ज्ञान से भी अधिक महत्व पूर्ण उसकी 'ममता' है, जिसे उसने अन्तिम श्वास तक बचाए रखा—

"ममता को लेकर ही समता
ममता में है मेरी क्षमता
फिर क्यों अब यह विरह विषमता
क्यों अपेय इस पथ का पाथ
तुच्छ न समझो मुझको नाथ।"

यशोधरा का विरह उस ममता की रक्षा का प्रयत्न है, जिसके त्याग के लिए ज्ञानियों ने भाँति भाँति के उपदेश दिए परन्तु नारी जाति ने अपने प्राण देकर भी जिसकी रक्षा की है।

संक्षेप में यशोधरा के विरह के यही वे गुण हैं, जिनके कारण हिन्दी साहित्य में उसको विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

प्रश्न ७—'यशोधरा' में वर्णित वात्सल्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अथवा

"यशोधरा में वात्सल्य रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

अथवा

'यशोधरा' का राहुल वात्सल्य रस का प्रतीक है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— यशोधरा काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है, इसकी पुष्टि के लिए गुप्त जी ने अनोखे ढंग से उसमें वात्सल्य को भी जोड़ दिया है। राधा, नागमती,

उर्मिला आदि विरहिणियों से यशोधरा का व्यक्तित्व सबसे पृथक अपना महत्व रखता है, क्योंकि उसका नारीत्व मातृत्व से सम्पन्न है। पत्नी और माता यशोधरा की इस द्विमुखी स्थिति में राहुल का एक विशिष्ट स्थान है। वह उसके पत्नीत्व और मातृत्व के सन्धि-स्थल पर खड़ा होकर उसकी इन दोनों विषय भावनाओं की संयमित करता रहता है। वास्तव में राहुल के ही कारण पत्नीत्व माता के सामने घुटने टेक देता है। विरहाग्नि की व्यथा के समय राहुल के प्रति वात्सल्य की शीतलता ने ही यशोधरा के हृदय को प्रतिपल दग्ध होने से बचाया और उसे कर्त्तव्य रत रखा। राहुल का सहारा यदि न होता तो सिद्धार्थ के बिना कहे चले जाने की आत्मग्लानि में यशोधरा सम्भवतः आत्महत्या कर डालती। अतएव यशोधरा की कथा में वात्सल्य का मधुर पुट देकर कवि ने राहुल को विशेष महत्व दिया है।

राहुल और यशोधरा के क्रिया-कलाप, हठ और परिचर्या तथा वार्तालाप में माँ और पुत्र दोनों के ही हृदयों की यथार्थ अभिव्यंजना हुई है। वह उर्मिला की भाँति केवल रुदन हीं नहीं करती रहती, वरन् राहुल के रूप में सिद्धार्थ की छाया देखकर अपने मन को सान्त्वना देना और राहुल की परिचर्या, शिक्षा आदि का ध्यान रखना भी है। राहुल के कारण उसे अपने अश्रुओं पर भी नियन्त्रण रखना पड़ता है। वस्तुतः राहुल ही यशोधरा का पूरक है। आचार्य विनयमोहन शर्मा लिखते हैं—

"यशोधरा की आँखों में कभी एक क्षण को मधुर भाव अँगड़ाइन्याँ नहीं भरने पाए हैं। इसका एक कारण है। यशोधरा में उर्मिला के समान केवल योवन ही नहीं मुस्कराता है। मातृत्व भी विलकारियाँ भरता है।"

'यशोधरा' के वात्सल्य में एक विशेषता यह भी है कि वह सूर और तुलसी के वात्सल्य की भाँति सयोगमिश्रित वात्सल्य नहीं है, बल्कि वियोगमिश्रित वात्सल्य है। कवि ने वियोगिनी यशोधरा के आँसुओं को बीच बीच में रोक कर जो समय निकाल पाया है उसमें इसकी धारा बहाकर यशोधरा के 'आँचल के दूध' को महत्ता प्रदान की है। इस वात्सल्य में माता के सच्चे त्याग की भावना छिपी है, कर्त्तव्यपरायणता का विश्वास छिपा है, भारत माँ का स्वरूप छिपा है, बालक की सरल मानस-भूमि पर साहस, शील, शौर्य और शक्ति के अंकुर उगाने वाले गुरु

की आकांक्षा छिपी है। इस लिए चाहे 'यशोधरा' के वात्सल्य में 'सूर' की सरसता न हो, तुलसी की मर्यादा न हो, रवीन्द्र की कोमलता न हो, फिर भी उसमें वह सब कुछ है जो होना चाहिए, कवि का अभिप्रेत था और जिसने 'यशोधरा' को 'यशोधरा' बना दिया। आगे हम संक्षिप्त उद्धरणों द्वारा इस वात्सल्य का सौन्दर्य आकेंगे।

अबला नारी की खीझ का प्रथम उसका शिशु ही रहता है। सोते सोते जागकर राहुल रो उठता है, चुपाए नहीं चुपता। यशोधरा प्रियतम के चिन्तन में लीन है, राहुल के रोने से उसके मधुर चिन्तन की शृंखला टूट जाती है, वियोग पीड़ा से वह खीझ उठती है अपने पर, प्रियतम पर और इस खीझ को उतारती है राहुल पर—

"चुप रह चुप रह हाय अभागे
रोता है अब किसके आगे।"

परन्तु, इतना कहते ही वह अपने को नियन्त्रित कर लेती है, क्योंकि इससे तो बालक का रुदन और बढ़ जाता और वह अपने को अनाथ समझ बैठता, पर यशोधरा जैसी माँ के रहते ऐसा कैसे सम्भव था। इसलिए तुरन्त उसे दुलराती हुई वह अपनी व्यथा को दबाकर कहने लगती है—

"बेटा मैं तो हूँ रोने को
तेरे सारे मल धोने को
हँस तू है सब कुछ होने को।"

'भवितव्यता तो होनी ही पर तू हँसता रहे', पुत्र के लिए माँ की ममता ऐसी ही होती है। वह अपने 'गुदड़ी के लाल' को भला अनाथ कैसे देख सकती है, इसलिए उसकी आशा विश्वास बन प्रगट होती है कि—

'भाग्य आएँगे फिर भी आगे'

माँ के लिए इतना संतोष क्या कुछ कम है कि उसके बेटे के पालन में कोई कमी न रहे—'गोपा गलती है पर उसका राहुल तो पलता है'। आगे वह विश्व-माँ के रूप में अपना आन्तरिक भाव प्रगट करती है—

'मेरा शिशु संसार यह दूध पिए परिपुष्ट हो'

बच्चों का संसार निराला ही होता है। हम अपनी अनेक चिन्ताओं, झंझटों को उनके बीच में पहुँचकर कुछ क्षणों को भुला देते हैं। फिर यशोधरा तो माँ ठहरी, वह यदि अपने सुन्दर, स्वच्छ, सलोने चन्द खिलौने से शिशु को प्राप्त कर अपनी टीस भुला देती है और सन्तोष-सुख पाती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? पुत्र की सहज सुषमा पर मुग्ध हो कर वह सोचती है कि यह अमूल्य उपहार तो प्रियतम को प्रदान करने योग्य है। इस स्थान पर गुप्त जी ने राहुल की सुन्दरता, यशोधरा के मन बसी प्रियतम की स्मृति और समर्पण की भावना तथा नाटकीय संकेत, एक साथ इतने भावों को भर दिया है—

"यह छोटा सा छौना।
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर सलौना।
क्यों न हँसूँ, रोऊँ-गाऊँ मैं लगा मुझे यह टौना।
आर्यपुत्र! आओ सचमुच मैं दूँगी चन्द-खिलौना।"

'चन्द-खिलौना' शब्द में कवि की गहरी अनुभूति प्रगट हुई है। बाद में यशोधरा राहुल को गौतम की शरण में जाने का आदेश देती है यह नाटकीय संकेत यहाँ बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त है।

यशोधरा के कुछ गीत वात्सल्य वर्णन में सूर के पदों से टक्कर लेते हैं बल्कि खड़ी बोली में लिखे जाने से उनमें और भी अधिक व्यापकता आ गई है। एक उदाहरण देखिये—

"किलक अरे? मैं नेक निहारु।
× × ×
लट पर चरना चाल अटपट सी मन भाई है मेरे।
तू मेरी अंघुली धर अथवा मैं तेरा कर धाके।
इन दातों पैं मोती वारू॥"

बालक राहुल अपनी परछाईं को देखकर डरने लगता है। अब वह कुछ कुछ बोलने लगा है। अपनी परछाईं को आंगन में न पाकर वह माँ से शिकायत करता है—

"ओ माँ ! आगन में फिरता या,
कोई मेरे संग लगा।
आया ज्मों ही मैं अलिन्द में,
छिपा न जाने कहाँ भगा।"

बालक को भोजन कराने के लिये यशोधरा, यशोदा की भाँतिमनाती है और दौड़ कर पकड़ना चाहती है किन्तु विरह के कारण वह दुखिया उसे नहीं पकड़ पाती तो बड़े दुलार से उसे पुरकारने लगती है—

"ठहर बाल गोपाल कन्हैया,
राहुल राजा भइया
कैसे धाऊं तुझको हार गई मैं दैया

× × ×

आ मेरी गोदी में आजा मैं हूँ दुखिया भैया"

राहुल चन्दा को एक खिलोना समझ कर माँ से मांगने का वाल हट करता हैं माँ अनेक वार उसे भोजन करने के समय चदां को ला देने का वादा कर चुकी है किन्तु दिया नहीं तो राहुल कैसा सुन्दर तर्क करता है।

"तब कहती थी दूंगी बेटा माँ अब इतनी खटपट क्यों ?"

बाल हठ का एक और सुन्दर उदाहरण देखिये—

"नहीं पियूंगा, नहीं पियूंगा पय हो चाहे पानी।"

यही नहीं छोटे २ बच्चे अनेक प्रकार की कहानियां गढ़ लेते हैं और उन्हें सुनाया करते हैं। राहुल की शखी उसके द्वारा गढ़ी हुई कहानी में मन को लुभा लेती है लगता है, वह तुतलाकर पाठक की कहानी सूना रहा है और पाठक के मन में राहुल की एक काल्पनिक सृष्ठि ही जाती है जिसके गाल पर धीरे से वह एक चपत जमाने की सोचने लगता है।

बालक का संसार अत्यन्त सीमित होता है जैसे-जैसे वह बढ़ता है उसे अनेक आश्चर्य, कुतूहल और जिज्ञासायें होती हैं। वालक की इस जिज्ञासा-प्रवृति का गुप्त ज़ी ने मनोहारी चित्रण किया है—

"अम्ब ! मेंरी वात तुझ तक कैसे पहुँच जाती है।"

अथवा

"अम्ब ! क्या पिता ने यही जन्म पाया है ?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें भाया है ?"

इस प्रकार राहुल के अनेक प्रश्नों का उत्तर देती हुई माँ कभी कभी तो अपना जी हल्का कर लेती है लेकिन जब राहुल कुछ विचित्र प्रश्नो की भड़ी लगा देता है तो वह निरुत्तर हो जाती है और उस समय वह एकान्त में बैठकर प्रियतम को पुकारती है कि अब तुम्हीं आकर इसके प्रश्नों का उत्तर दो।

राहुल वालक होने पर भी बड़ा तार्किक है वह माँ से रोने का कारण पूछता है। माँ उसका कारण अपनी इच्छा बताती है परन्तु राहुल इतने से संतुष्ट नहीं होता क्योंकि उसे कोइ उचित उत्तर नहीं मिलता। राहुल को सुलाने के लिये यशोधरा ने जो लोरी गाई है वह तो इस कृति के गीतों में अपनी सरलता, कोमलता और भाव प्रवणता के लिए प्रसिद्ध है—

"सो अपने चंचलपन सो ! सो मेरे अँचल धन सो"

इसमें राहुल के प्रति प्रयोग किये गये विशेषण, माँ की वात्सलता और आत्म-तोष को सहज ही प्रगट कर देते हैं फिर उसे जगाने के लिये प्रभाती सी गाती हुई कहती है।

"मेरा वेटा भैया राजा उठ मेरी गोदी में आजा"

माता को क्या यह भय बना रहता है कि बालक को कहीं नजर न लग जाय इसलिए 'डिठौना' शब्द बड़ा प्रचलित है। सूर, तुलसी और गुप्त जी ने इसे बहुत महत्व दिया है। यशोधरा राहुल के द्रीठि का टीका लगानी चाहती है किन्तु राहुल किलकार कर भाग जाता है और टीका न लगवाने का तर्क देता है—

"लोहित विन्दू भाल पर तेरे,
मैं काला क्यों दूं मां।
लेती है जो वर्ण आप तो
क्यों न वही लूं मां !"

वेचारी यशोधरा इसका क्या उत्तर देती। वह मुस्करा कर रह जाती है। इस प्रकार के सून्दर तर्क और वाल चातुर्य-मय वर्णन यशोधरा में हीरे के

भांति जड़े हुए हैं। बालकों में कल्पना की उड़ान बड़ी मनोहारी होती है। राहुल जी कल्पना के पंख लगाकर आकाश में चक्कर काट कर पिता को देखने की लालसा करता है। कैसी मधुर लालसा है—

"विहंगसमान यदि अम्ब, पंख पाता मैं,
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं।
मण्डल बनाकर मैं घूमता गगन में
और देख लेता पिता बैठे किस बन में।"

पिता से मिलने की इच्छा उसकी दिन प्रनिदिन बलवती हो रही थीं। वह यही सोचता है कि किसी प्रकार पिता के पास पहुँचकर उन्हें चौंका देता और जब वे कहते कि 'तू कौन है ?" तो अपना नाम बताकर उन्हें अवश्य ले आता। पिता को वह अपने निवेदन से अवश्य बुलाता हैं, यह सरल विश्वास पुत्र का ही हो सकता है। वह पिता की गोदी में खेलने के लिए भीतर ही भीतर व्याकुल है। इस अतृप्ति का अनुभव वह स्वप्न में करता है और पिता से याचना करना है कि तुम मुझे गोदी में ले लो। किन्तु, उसे ज्ञात है कि पिता उसे माँ पर छोड़ गए हैं; माँ ही उसकी संरक्षिका है। इसलिए स्वप्न में जब वह पिता से निवेदन करता है तब यह भी सोचता है कि पिता कह देंगे—'तेरी जननी क्या असमर्थ हो गई है ?"

बालक राहुल के अतिरिक्त गुप्त जी ने किशोर राहुल के कुछ पहलुओं का चित्रण भी किया है। शिष्टाचार के नियमों के प्रति जागरुकता उसमें इस समय बुद्धि के विकास के साथ बढ़ती जाती है। वह कहता है—

"मेरा विनय सदा गुरुजनों का आशीष चाहता है। दादाजी कहते हैं कि शिष्टाचार के नियम की रक्षा होनी चाहिए। इस कारण मेरे प्रणाम करने पर ही तुझे आशीष देना चाहिए। नहीं माँ ?"

'नहीं माँ' पर ध्यान दीजिए। वालक का भोलापन इन दो शब्दों में समा गया है। कौन ऐसी माँ होगी जिसका मन इन शब्दों को सुनकर भर नहीं आएगा।

माँ की देखरेख में वह शीघ्र ही उन सभी बातों में प्रवीण होगा, जिनमें कि एक क्षत्रिय राजकुमार को होना चाहिए। अश्वारोहण, व्यायाम, शस्त्र चलाना, और वाण फेंकना उसकी आयु वाला कोई भी उससे अधिक न जानता था। स्वावलम्बन का पाठ वह पढ़ रहा था।

माँ की उसे बहुत चिन्ता रहती थी, वह पिता की चर्चा को सुनकर दुखी हो उठती थीं इसलिए वह यथा शक्ति उस चर्चा को नहीं आने देता था।

माँ के प्रति उसमें अगाध श्रद्धा है। इसलिए माँ जब-बहू की बात बीच में ला देती है तो स्पष्ट कह देता है—'वह आकर मेरे और तेरे बीच में खड़ी हो जाएगी इसे मैं सहन नहीं कर सकता। बहू क्या पिता को भी वह माँ की समता में न्यून मानता है। बुद्ध के आने पर वह कहता है—

"तात! तुम्हारा तप मुखरित है माँ का नीरव मात्र,
पर अथाव पानी रखता है यहसूखा सा मात्र।"

अन्त में माँ की आज्ञा को शिरोधार्य कर वह पिता से परम्परा पाने के लिए तत्पर दिखाई देता है—

'तात, पैतृक दाय दो निजशील सिखलाओ मुझे,
प्रणत हूँ मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओ मुझे।"

संक्षेप में राहुल की बाल-क्रीड़ा, हठ, वार्तालाप, आदर्शपालन, सद्भावना आदि जिस प्रकार यशोधरा के लिए आल्हादक एवं सन्तोष प्रद सिद्ध हुई उसी प्रकार पाठक के मन को भी रस से आल्पावित करती है। कहीं कहीं इस वर्णन में नीरसता और अस्वाभाविकता अवश्य है, परन्तु यशोधरा की पृष्ठभूमि न बिगड़ने पाई, इस ध्यान के कारण लेखक का यह दोष क्षभ्य है और हम मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि यदि राहुल के रूप में वात्सल्य की सरसता 'यशोधरा' में न होती तो पाठक को यशोधरा का रुदन ऊहात्मक लगने लगता और वह उसे पढ़ कर ऊब उठता।

प्रश्न ८—"यशोधरा विप्रलम्भ शृङ्गार का काव्य है, पर यत्र तत्र शान्त और करुण के दो चार छींटे दिखाई पड़ जाते है।" इस कथन के सत्यासत्य पर विचार कजिए।

अथवा

'यशोधरा को कुछ ने शान्तरस, कुछ ने करुणारस, और कुछ ने विप्रलम्भ शृङ्गार प्रधान काव्य माना है।' आप इनमें किस मत्त से सहमत हैं, सप्रमाण उत्तर दीजिए।

अथवा

यशोधरा में कौन सा रस प्रधान है और क्यों ? सोद्धरण अपने प्रमाण की पुष्टि कीजिए।

उत्तर— गुप्तजी ने 'यशोधरा' के सम्बन्ध में एक बड़ा मनोरंजक शब्द प्रयुक्त किया है कि वह 'खिचड़ी' है। काव्य-विद्या और रस-परिचायक दोनों ही ओर गुप्तजी का यह 'खिचड़ी' शब्द लग जाता है। किन्तु साहित्य-समीक्षक गुप्तजी के इस शब्द से ही सन्तुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह तो हर क्षेत्र में निर्धारित कसौटी का ही प्रयोग करके कोई निर्णय दे सकता है। परन्तु, आश्चर्य है कि 'यशोधरा' के सम्बन्ध में शैली और विधान की ही भाँति समीक्षकों में रस का भी एक विवाद चल पड़ा है। एक वर्ग मानता है कि इसमें शान्तरस प्रधान है तथा वात्सल्य और विप्रलम्भ-शृङ्गार गौण, तो दूसरा वर्ग इसमें करुणारस का प्राधान्य तथा वात्सल्य और विप्रलम्भ की गौणत्व स्वीकार करता है और तीसरे वर्ग का कथन है कि 'यशोधरा' विप्रलम्भ-शृङ्गार प्रधान काव्य है, करुण और वात्सल्य इसमें सहयोगी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। हम यहाँ प्रत्येक वर्ग के तर्कों को उपस्थित करके यशोधरा की रस-भावना के सम्बन्ध में उचित निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेंगे।

यशोधरा में शान्तरस का परिपाक—शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। इसके आलम्बन भगवत् चिन्तन, संसार की क्षणभंगुरता, असारता तथा माया मोह के भ्रामकरूप का भान आदि होते हैं। साधु महात्माओं के आश्रम, पावनगंगा, यमुनातट, एकान्तवन, सात्विक जीवन, पवित्र तीर्थ आदि उद्दीपन हैं और निर्वेद, हर्ष, आदि संचारी हैं। इन सबके संयोग से शान्तरस की निष्पत्ति होती है। इस दशा में आश्रय संसार के प्रति उदासीन होकर उससे दूर भागता है। 'यशोधरा' में गौतम के अन्दर यही मनोवृत्ति विद्यमान है। ग्रन्थ के आरम्भ में गोतम यौवन और जीवन के अन्तिम परिणामों के प्रति चिन्तनशील हैं। उनके मन में संसार के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। फलस्वरूप वे घर को छोड़कर चले जाते हैं और घोर तपश्चया द्वारा कैवल्य प्राप्त कर संसार के जीवों

को मुक्ति मार्ग का उपदेश देते हैं। उनके इस मार्ग के प्रति आकर्षित होकर प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण करने वाली यशोधरा भी उसे अपनाते हुए 'संघं शरणं गच्छामि' एवं 'धर्मं शरणं गच्छामि' का उद्घोष करती है। इस प्रकार ग्रन्थ का आरम्भ शान्तरस से हुआ है और उसका अन्त भी इसी रस में। अस्तु, इन प्रमाणों को आधार मान कर एक वर्ग कहता है कि यशोधरा में शान्त रस की ही प्रधानता है।

परन्तु, रस सम्बन्धी निर्णय का आधार ग्रन्थ का प्रधान पात्र होता है। इसके अतिरिक्त मुख्य रस वही माना जाएगा जो आदि से अन्त तक क्रमशः विकसित और प्रवाहित हो रहा हो। हम कह चुके हैं कि निर्वेद की भावना गौतम के भीतर विद्यमान है और गौतम इस ग्रन्थ का प्रधान पात्र नहीं है। कवि की सारी संवेदना गौतम के प्रति प्रगट न होकर यशोधरा के प्रति प्रगट हुई है। यशोधरा ही इस कृति की प्रधान पात्र है, कवि ने उसके निर्वेद से नहीं 'आँखो' के आँसुओं से अपनी वाणी को भिगोया है। दूसरे शान्त रस का उचित विकास दिखलाने में भी कवि असमर्थ रहा है। सिद्धार्थ के मानसिक द्वन्द्व और महाभिनिष्क्रमण के प्रसंग तक तो शान्तरस का सन्तुलन हुआ है, परन्तु उनके वन-गमन करते ही निर्वेद का अन्त हो जाता है। अतः शान्तरस का स्रोत निरन्तर प्रवाहित न होकर बीच में ही सूख जाता है और विप्रलम्भ शृङ्गार तथा वात्सल्य रस की मिश्रित धारा बह चलती है। कथा और रस की दृष्टि से कृति का यह भाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसमें ही यह प्रगट होता है कि यशोधरा भुक्तिनटी पर व्यंग्य करती हुई उसका तिरस्कार करती है। इस विषम परिस्थिति में भी वह अपने जीवन के सम्बन्ध को यत्न पूर्वक बचाये रखना चाहती है। जगत के प्रति उसकी पूर्ण आसक्ति है, वह तो सौ बार मर कर भी जगत में आना पसन्द करती है, कवि के द्वारा निवृत्ति पर गहरी चोट की गई है। ग्रन्थ के अन्त में, जहाँ लगता है कि शान्त-रस की धारा फिर वह चली है, एक बात ध्यान देने योग्य है कि इस समग्र के वर्णन के पीछे मूल भावना कोन सी है! वस्तुतः यशोधरा एक मोक्ष प्राप्त, संसार से विरक्त सन्यासी का स्वागत करने को तत्पर नहीं है, बल्कि अपने उस चिरन्तन हृदय आराध्य प्रियतम का स्वागत करने जा रही है जो उसके आँगन में उसके अनुराग और मान से हारकर अकिंचन की नाई क्षमा की भीख माँगने आया है। सती नारी

के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या होगी ! इससे स्पष्ट है कि इस वर्णन के मूल में शुद्ध शृङ्गार भावना ही स्थित है, शान्त-रस का स्थायीभाव निर्देश नहीं । अतएव 'यशोधरा' में शान्त-रस को प्रधानता देना उचित प्रतीत नहीं होता । हाँ, लेखक के उद्देश्य को देखते हुए हम उसे सहायक रस के रूप में अवश्य स्वीकार कर सकते हैं ।

यशोधरा में करुणारस का परिपाक :—

करुणारस में 'इष्ट वस्तु की हानि, अनिष्ट का लाभ, प्रेमपात्र का चिर वियोग, अर्थ-हानि आदि से स्थायीभाव 'शोक' की परिपुष्टि होती है । शोक जन्य वस्तुयें तथा प्रियजनों का नाश इसके आलम्बन और उनके अन्तिम संस्कार उद्दीपन होते हैं । यह रस इतना अधिक मार्मिक होता है कि भवभूति जैसे कवि वेदान्त के विवर्तवाद के अनुसार सर्वत्र इसी की सत्ता को देखते हैं—

"एकोरसः करुण एव निमित्तभेदा—
द्भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा—
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥"

'एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न होता हुआ पृथक्-पृथक् शृङ्गार आदि परिणामों को आश्रय करता है; ऐसा लगता है जैसे एक जल ही भँवर, बुदबुद और तरंग रूप अनेक विचारों का आश्रय करता है, वास्तव में वह सब जल ही है ।'

करुणारस की इतनी अधिक महत्ता और व्यापकता के कारण श्यामसुन्दरदास जैसे विद्वान् यशोधरा में करुणारस की प्रधानता स्वीकार करते हुए कहते हैं— 'यह करुणारस का सुन्दर काव्य है । यशोधरा की कथावस्तु पर एक दृष्टि डालने पर ही प्रगट होता है कि सिद्धार्थ को पत्नी का मधुर संयोग प्राप्त हुए कुछ ही क्षण बीते थे कि वे उस हास-विलास और विनोद पूर्ण प्रियतमा को उपेक्षित करके तप के निमित्त चल देते हैं । बेचारी यशोधरा को उन थोड़े से मधुर क्षणों को छोड़कर शेष जीवन प्रियतम के चिर वियोग में ही बिताना पड़ता है और फिर पूरी कथा यशोधरा के आँसुओं से भीग उठी है । प्रियतम के अज्ञातवास और लौटने की

अज्ञात अवधि की बात सोचकर वह आठ आठ आंसू बहाती हुई गला करती है। संयोग के क्षणों का स्मरण उसकी वेदना को और अधिक गहरा कर देता है, कभीं-कभी तो उसके हृदय की गति रुक जाती है। स्वप्न में प्रियतम की कठिन तपस्या और अस्थिपंजर-शेप स्वरूप को देखकर उसे अनिष्ट की भी शंका होने लगती है। दूसरी ओर अपनी क्षीणता को देख देखकर वह इस अनिष्ट की शंका करती है कि कहीं आँखों का अर्घ्य छलक न जाये और उसकी पूजा का थाल गिर न पड़े। कथा के अन्त में उसे प्रियतय के दर्शन तो हो जाते हैं पर पति के रूप में नहीं,भगवान के रूप में, अपने प्रेम के पात्र से तो उसका चिर वियोग ही रहता है। उसकी इस करुणा पूर्ण स्थिति को देखकर यदि कोई ग्रन्थ में करुणारस की प्रधानता मानने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

परन्तु, करुणारस का स्थायी भाव शोक होता है और यशोधरा का कोई स्थाई शोक नहीं है। उसमें पीड़ा, वेदना, कसक और उपालम्भ है, परन्तु शोक नहीं है। प्रिय के वियोग के कारण दुख होता है, शोक नहीं होता। शोक तो तभी होता है जब किसी की मृत्यु हो जाय अथवा यह विश्वास हो जाय कि उसका प्रेम-पात्र अब दर्शन के रूप में भी नहीं मिल सकता यशोधरा को इसके विपरीत दृढ़ विश्वास है कि—

"तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम
यहीं इसी आँगन में ॥"

अस्तु, यशोधरा में जितनी अधिक वेदना की अतिशयता है उतना ही अधिक दृढ़ विश्वास भी, इसलिए वह शोभा की सीमा तक नहीं पहुँच पाती। यह कहना कि यशोधरा का अन्त में भी अपने आत्मीय, अपने प्रियतम से मिलन नहीं हुआ, वरन् वह तो भगवान से मिलन था, ठीक नहीं जँचता। गोतम चाहे भगवान हों चाहे साधारण मनुष्य, यशोधरा के तो वे प्रियतम ही थे। यदि यह बात न होती तो 'मानिनी मानत जो लो रही तुम्हारी बान' और 'हीन न हो गोपे हीन नहीं नारी कभी' जैसे आत्मीयता से भरे वाक्य बुद्ध के मुख से नहीं निकलते। वस्तुतः यशोधरा ने तो अपने जीवन धन का ही स्वागत किया था, उसी की आरती उतारी थी और अन्त में अपने पुत्र को भी उनके चरणों में डालकर आत्म समर्पण

किया था, और बुद्ध ने भी पत्नी और पुत्र को स्वीकार कर ही लिया क्यों कि पत्नी ने 'वधू-धर्म' का पूर्ण पालन किया था और पुत्र में वे सारे गुण विद्यमान थे जो बुद्ध को कृत कृत कर सकते थे, फिर उसे अपने उत्तराधिकार से कैसे वंचित रखा जा सकता।

पति-पत्नी और पुत्र के इस मधुर-मिलन से सिद्ध हो जाता है कि इसमें करुण रस के देवता यमराज को कहीं स्थान नहीं मिला। अन्त में सभी आनन्द मग्न और गद्गद् दिखाई पड़ते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यशोधरा में करुण रस की भाव प्रवणता और संवेदना तो है पर करुण रस नहीं है, क्योंकि उसमें शोक का संचरण कहीं नहीं होता।

विप्रलम्भ शृंगार की कसौटी पर यशोधरा:—

उपर्युक्त विवेचन में हम 'यशोधरा' को दो रसों की दृष्टि से देख चुके हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उन दो में से किसी भी रस की प्रधानता 'यशोधरा' में नहीं है, यद्यपि किसी अंश तक वे ग्रंथ में विद्यमान अवश्य हैं, परन्तु, तव तो वात्सल्यरस की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते क्योकि इसको भी गुप्त जी ने बड़ी सुन्दरता से अपनी काव्य-लड़ियों में पिरो दिया है। किन्तु, हमारा उद्देश्य तो ग्रंथ के प्रधान रस को पहिचानना है। अस्तु, इस दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार पर यशोधरा को कसकर देखना है।

लेखक के उद्देश्य और रसों के वर्णन में प्रत्येक के अनुपात को देखते हुए यह बात छिपी नहीं रहती कि 'यशोधरा' में विप्रलम्भ शृंगार की ही सर्व व्यापकता विकीर्ण है। हाँ, संयोग शृंगार के दर्शन हमें इसमें वहुत थोड़े क्षणों के लिए होते हैं। वस्तुतः रस को प्रधानता को पहिचानने की कसौटी यह है कि सम्पूर्ण रचना में उसका व्यापक प्रभाव हो। प्रभाव की यह व्यापकता 'यशोधरा' के अन्तर्गत हमें न शान्त रस की मिली और न करुण रस की, प्रत्युत् विप्रलम्भ की व्यापकता से सारी 'यशोधरा' सरावोर है। कवि ने विप्रलम्भ के चारो प्रकारों—पूर्व राग, मान, प्रवास, और करुण-का यथेष्ट वर्णन किया है। यशोधरा का वास्तविक प्रारम्भ उस स्थान से होता है जब गौतम सांसारिक माया-मोह से ऊबकर अपनी पत्नी को छोड़कर वन में चले जाते है। इसके पश्चात् ही विरह के उस अथाह सागर के

दर्शन होते हैं जिसका वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और अन्त में ग्रन्थ की समाप्ति के साथ पाठक इस विप्रलम्भ शृंगार में डूबते उतराते शान्त रस की भूमिका में पहुँच जाता है।

विप्रलम्भ शृंगार की अवस्थाओं पर दृष्टि पात करने से ग्रंथ में उसकी प्रधानता और भी अधिक पुष्ट हो जाती है। सौंदर्य आदि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका के समागम से पूर्व की भाव दशा पूर्वराग कहलाती है। यशोधरा प्रियतम के सौंदर्य और गुणों को सुन चुकी थी और पहले से ही वे उसके मन-मन्दिर में बस गए थे। इसी से वह कहती है—

'प्रियतम तुम श्रुति पथ से आए'

वियोग-जीवन को वहन करते हुऐ उसे संयोग का प्रत्येक मधुर क्षण याद आ रहा है, यह सम्पूर्ण वर्णन पूर्व राग में आ जाएगा।

अब मान की स्थिति को लीजिए। मान दो प्रकार का होता है—प्रणय-मान और ईर्ष्या-मान। यशोधरा में दोनों प्रकार का मान है। गौतम गोपा को बिना सूचना दिए चोरी चोरी चले गए, इस कारण उसका रूठना प्रणय मान का परिचायक है। उसका यह मान अन्त तक अटल रहता है। जब सिद्धार्थ बुद्ध होकर लौटते हैं, तब वह अपने कक्ष में ही बैठे हुए कहती है—

'गोपा वहीं है छोड़कर उसको गए थे वे जहाँ।'

अन्त में गोपा के प्रणय-मान की विजय हुई और अपराधी गौतम को गोपा के द्वार पर आकर क्षमा माँगनी पड़ी—

'मानिनी मानत जो लो रही तुम्हारी बान'

ईर्ष्यामान का कवि को अधिक वर्णन करने का तो अवसर नहीं मिला, परन्तु फिर भी उसने भुक्ति में नारीत्व मानकर ईर्ष्या-मान की सज्जा भी तैयार कर दी। ईर्ष्यामान तब होता है, जब नायक अन्य स्त्री से अनुराग करने लगता है। प्रेम दोनों ओर से अपना अक्षुण्ण अधिकार चाहता है, तीसरे की उपस्थिति ईर्ष्या का कारण बन जाती है, क्योंकि वहाँ प्रतिद्वन्द्विता को स्थान नहीं होता। कवि ने बड़े कौशल से मुक्ति को यशोधरा की प्रतिद्वन्द्विनी बना दिया है—

"है नारीत्व मुक्ति में भी तो अहो विरक्ति विहारी"

इसलिए वह ईर्ष्या करती हुई पति पर व्यंग्य करती है—

"चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी मुक्ति तुम्हारी रानी"

इस ईर्ष्या में भी कितनी अधिक सात्विकता है, यही कवि का कौशल है।

प्रवास का भी तो ग्रन्थ में पूर्ण परिपाक हुआ है। प्रवास-विप्रलम्भता होता है जब कार्य वश, भ्रमवश या शापवश नायक को परदेश गमन करना पड़ता है। सिद्धार्थ का प्रयास कार्यवश है, भ्रम या शापवश नहीं। वे सिद्धि की साधना के लिए वन गए हैं। उन्होंने नारी को सिद्धि मार्ग की बाधा मानकर सोती हुई गोपा को त्याग दिया है, गोपा वियोगिनी बन जाती है और उसका यह वियोग तभी समाप्त होता है जब गौतम लौट आते हैं। इस वर्णन में उसका वियोग अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है और पाठक के मन की सहानुभूति, गोपा के त्याग, तप और दमनीय दशा को देखकर उमड़ पड़ती है, वह भी शुद्धोधन के स्वर में स्वर मिलाकर कह उठता है—

"गोपा बिना गोतम भी ग्राह्य नही मुझको"

करुणात्मक विप्रलम्भ उस स्थिति में होता है जब नायक और नायिका प्रेम-विह्वल होकर छटपटाने लगते हैं, परन्तु इसमें करुणारस के विपरीत मिलन की आशा लगी रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि जब वियोग चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब करुणात्मक विप्रलम्भ शृंगार होता है। यशोधरा भी वियोग की इस सीमा पर पहुँच गई है। वह अत्यन्त क्षीण हो गई है, प्रलाप करने लगी है, एक बार तो संज्ञा शून्य भी होगई है मरण उसे सुन्दर लगने लगा है, परन्तु फिर भी मरण का वरण नहीं करती है क्योंकि एक क्षण को भी उसकी आशा नहीं टूटती, यह आशा उसके रति भार को जीवन दिए रहती है अतएव वह वियोग की अन्तिम दशा मरण तक नहीं पहुँचती। इस प्रकार विरह की चारों अवस्थाएँ 'यशोधरा' में वर्णित है।

विरह की अन्तर्दशाओं की दृष्टि से भी 'यशोधरा' एक सफल विरह काव्य सिद्ध होता है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, उद्वेग, गुणकथन, प्रलय, व्याधि, जड़ता, उन्माद और मरण में अन्तिम को छोड़कर थोड़ा बहुत सबका वर्णन मिलता है। यशोधरा के विरह से प्रकृति भी संवेदनशील हो उठी है, इस कारण उसमें और अधिक मार्मिकता बढ़ गई है। अस्तु,

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'यशोधरा' आदि से अन्त तक यशोधरा के आँसू अथवा शृंगार के विप्रलम्भ पक्ष से ओत प्रोत है 'शुल्क' में लिखी हुई गुप्त जी की यह उक्ति पूरी तरह सत्य सिद्ध होती है कि—

"—राहुल जननी के दो चार आँसू की तुम्हें इसमें मिल जायें तो बहुत समझना।"

उपर्युक्त पंक्ति से कवि का उद्देश्य भी प्राप्त हो जाता है कि वह यशोधरा के वियोग-पक्ष का ही उल्लेख करना चाहता था। अतएव स्पष्ट है कि यशोधरा का प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है तथा शान्त, करुण और वात्सल्य सहायक रसों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जिससे काव्य सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है।

प्रश्न ६—"यशोधरा" के प्रकृति-चित्रण में प्राचीन परम्परा के साथ हो साथ नवीनता के भी दर्शन होते हैं'—विवेचना कीजिये।

अथवा

'यशोधरा' के प्रकृति-चित्रण पर एक निबन्ध लिखिए।

अथवा

'यशोधरा' के प्रकृति-चित्रण पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध कीजिए कि प्रकृति मानव के प्रति संवेदन शील है।

उत्तर—मानव और प्रकृति में सदैव से घनिष्ठ साहचर्य रहा है। उसने शिशु रूप में जब पहले पहल अपनी कोमल पलकें खोलीं तो प्रकृति देवी अपनी विस्मय-कारी सुखमा के साथ उसमें समा गई और तब से वह उसे असीम आनन्द, अनन्त प्रेरणा और अपार शक्ति प्रदान करने लगी। इस घनिष्ठता के कारण मानव ने प्रकृति के हाथों अपना हृदय बेच दिया और प्रकृति ने जन्म-जन्मान्तर के लिए उसे अपनी गोद अर्पित करदी। मानव और प्रकृति दोनों का यह मन मोहक समर्पण भूत, वर्तमान और भविष्य के इतिहास में सदा सर्वदा अक्षुण्ण रहेगा। वस्तुतः प्रकृति अपने अनेकों रूपों से मानव भावनाओं को अनन्तकाल से प्रभावित करती चली आ रही है, इसलिए विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में प्रकृति मानव की चिर सहचरी के रूप में चित्रित की गई है।

समय समय पर मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियों, कला तथा व्यक्तिगत रुचि में परिवर्तन होता है, कवियों के दृष्टिकोण में भी यह भिन्नता आना

स्वाभाविक है, इसलिए उन्होने प्रकृति को भी अनेक रूपो से अपनाया हैं। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में प्रकृति का थोड़ा बहुत चित्रण आलम्बन रूप में और अधिकांश उद्दीपन रूप में हुआ है। तुलसीदास आदि ने उपदेशात्मक रूप में भी उसका चित्रण किया है। सूर ने एक ओर जहाँ गोपियों की विरह-भावना उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति का उद्दीपन रूप अपनाया है, वहाँ दूसरी ओर कृष्ण के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए उसको उपमान रूप में भी चित्रित किया है। रीतिकाल में भी प्रकृति का यही परम्परित रूप रहा। सेनापति, देव, बिहारी और घनानन्द आदि ने रीतिकाल की परम्परा पालन करने के लिए ही प्रकृति का वर्णन किया है। उस काल को प्रकृति का कार्य नायक-नायिकाओं के हृदय की शृंगारिक भावनाओं को उद्दीपन करना ही दिखाई पड़ता है। अतएव आदि-काल से लेकर मध्यकाल तक के प्रकृति-वर्णन के लिये एक लेखक की यह उक्ति सत्य ही प्रतीत होती है—

"हिंदी की प्राचीन कविता में ऋतु-वर्णन परम्परित शैली में वहुत ज्यादा किया गया है। प्रकृति के द्वारा या तो संयोग की प्रसन्नता और वियोग की पीड़ा का वर्णन किया गया है या नैतिक उपदेश दिए गये हैं।

केशव आदि ने तो प्रकृति के अङ्गों के नाम ही गिनाए हैं और वस्तु-परिगणन की यह प्रवृत्ति 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' तक में दिखाई पड़ती है। वस्तुतः नायक नायिकाओं के स्थूल सौन्दर्य के सामने सारे मध्यकाल में प्रकृति घुटने टेके रही। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि उस समय की निर्लज्जता को देख-कर प्रकृति देवी लज्जा के भार से दबी सिकुड़ी दिखाई पड़ती है।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में कवियो ने प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में दो प्रमुख प्रवृत्तियों का अनुसरण किया। पहली प्रवृत्ति प्राचीन ऋतु वर्णन की थी। इसमें नगर-वर्णन, प्रभात-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन प्रमुख था। मैथिलीशरण गुप्त, गिर-धर शर्मा, सत्यनारायण कविरत्न आदि के प्रकृति-वर्णन में यही प्रवृत्ति झलकती है। परन्तु युग-परिवर्तन के साथ गुप्तजी में परिवर्तन हुआ वे छायावाद से प्रभा-वित हुए, और तब इनकी प्रकृति-चित्रण की शैली में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द और सहजोद्रेक की

थी। श्रीधर पाठक की 'काश्मीर-सुषमा' में हमें सर्व प्रथम इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। फिर पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि कवियों की प्रवृत्ति शुद्ध प्रकृति की ओर मुड़ी। इन कवियों ने प्रकृति के रहस्यमय संकेत सुने समझे और उनको अपनी कविता में व्यक्त किया। इसी प्रवृत्ति से छायावाद और रहस्यवाद का आधुनिक-काल में जन्म हुआ। डा० श्रीकृष्णलाल अपने प्रवन्ध में कहते हैं—

"हमारे काव्य-जगत में प्रसाद, निराला पन्त महादेवी आदि श्रेष्ठ कवियों के आजाने पर प्राकृति के विभिन्न रूपों के चित्रण में वहुत बड़ी क्रान्ति मची। वस्तुतः स्वच्छन्द-प्रकृति-वर्णन की रीति इन्हीं कवियों ने चलाई। गुप्तजी भी अपनी पुरानी शैली को त्याग कर नई शैली की तरफ लपके।"

प्रकृति वर्णन के ये विभिन्न रूप हमें 'साकेत' तथा 'यशोधरा' में मिलते हैं। प्राचीनता का मोह तो वे पूरी तरह नहीं छोड़ सके, किन्तु फिर भी आधुनिकता का प्रभाव उन पर पड़ा ही। जैसे-जैसे प्रवृत्तियों का परिवर्तन हुआ, वैसे वैसे गुप्त जी में भी थोड़ा वहुत परिवर्तन होता गया। इस युग में प्रकृति का वर्णन प्रधान होगया, कवियों में प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम उमड़ पड़ा। इस कारण इस समय की प्रकृति सम्वन्धी कविता अधिक मनोरम और आकर्षक है। श्री कृष्णकुमार सिनहा ने ठीक ही कहा है—

"आज हमने अपने सामाजिक जीवन को उन्नत, समृद्ध, तथा संश्लिष्ट बनाने के लिए प्रकृति को साधन वनाया, क्योंकि उसमें जीवन और हृदय का अमर स्पन्दन है।" गुप्तजी के विषय में वे कहते हैं—गुप्तजी ने भी इसी को अपने हृदय से लगाया और वे भी मानवेतर प्रकृति के जीवित, जाग्रत और स्पन्दित रूप की सौन्दर्यमुखी अनुभूति से वंचित न रह सके। गुप्तजी ने जीवन और काव्य में करुणा को अधिक आश्रय दिया है और इसी करुण-तत्व ने ही उन्हें प्रकृति की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने भी प्रकृति को जीवन का एक अंग माना है और उसकी महत्ता की ओर हमारा अवधान खींच रखा है। यों तो वे प्रकृति के प्रभाव से वच नहीं पाए हैं। प्रकृति के उपादान 'यशोधरा' में यत्र-तत्र कई रूपों में विखरे पड़े हैं।"

गुप्त जी के प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में उपर्युक्त लेख में वड़ी ईमानदारी से लिखा है। इस विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुप्त जी ने अव तक

प्रचलित, प्रकृति के सभी रूपों को यथा विधि चित्रित किया है। अतएव प्रकृति के इन सभी रूपों में हम गुप्त जी के सराहनीय प्रयास को 'यशोधरा' में पढ़ सकते हैं।

हिंदी-साहित्य संस्कृत और पाश्चात्य साहित्य में वर्णित प्रकृति-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों का संगम-स्थल बन गया है। इन पद्धतियों को समझाने के लिए विद्वानों ने उन्हें निम्नलिखित स्थूल रूपों में विभाजित किया है—

(१) प्रकृति का आलम्बन रूप (२) उद्दीपन रूप (३) आलंकारिक (उपमान) रूप (४) उपदेशात्मक रूप (५) वातावरण या पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण (६) दूतिका के रूप में (७) बिम्ब-प्रतिबिम्ब-रूप में (८) मानवीकरण के रूप में (९) प्रतीकात्मक रूप में (१०) ईश्वरीय सत्ता की अभिव्यक्ति के रूप में।

प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण— आलम्बन रूप में प्रकृति का संश्लिष्ट वर्णन होता है, प्राकृतिक वस्तुओं का पृथक पृथक परिगणन नहीं होता। इसके भव्य रूप तो हमें संस्कृत साहित्य में ही मिलते हैं अथवा प्रसाद, पंत आदि आधुनिक कवियों में। गुप्त जी 'यशोधरा' में केवल 'हिमालय-वर्णन तथा अन्य थोड़े से स्थलों में ही इस रूप को अपना सके हैं—

"देखो यह उत्तुंग हिमालय,
खड़ा अचल योगी सा निर्भय
एक ओर हो यह विस्मय भय
एक ओर यह गात रहे"

अथवा

पुष्कर सोता है निजसर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में।

× × ×

'ऊपर तारे झलक रहे हैं
गोरवों से लग ललक रहे हैं
नीचे मोती झलक रहे हैं'

उद्दीपन रूप— प्रकृति संयोग और वियोग दोनों में ही उद्दीप्त करती है। संयोग में इसके द्वारा आनन्द-भावना उद्दीप्त होती है और वियोग में वेदना। कवि

का उद्देश्य यशोधरा के वियोग का वर्णन करना था, अतः यशोधरा में प्रकृति अधिकतर उद्दीपन रूप में ही चित्रित हुई है। इसका एक कारण यह भी है कि कवि की कृति प्राचीनता से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकी है। यशोधरा में—

'सखि वसंत से कहाँ गये वे
मैं उष्मा सी यहाँ रही'

—पद में गुप्त जी ने 'बारह मासा-पद्धति' के द्वारा प्रत्येक ऋतु में यशोधरा की विरह-वेदना को अभिव्यक्त किया है। सम्पूर्ण प्रकृति वियोगिनी के दुःख से दुःखी है। "वर्षा की धार किसी के भरे हृदय की धारा मालूम पड़ती है, शरद-ज्योत्स्ना में प्रियतम की शान्ति कान्ति दिखाई पड़ती है, पतझड़ उसके प्रियतम का त्याग देखकर पत्तों को त्याग देता है, वसन्त यौवन सम्पन्न प्रियतम सा दिखाई पड़ता है, शिशिर में सिद्धार्थ के हवनकुण्ड के सदृश घर-घर में अग्नि कुण्ड जलने लगते हैं।"

वियोग में संयोग के स्थल और अधिक कष्टदायक हो जाते हैं। गौतम यशोधरा के साथ रोहिणी के तट पर जाकर पक्षियों को विविध भोजन देकर आनन्द लिया करते थे। आज उस सूने तट को देखकर यशोधरा रो रो कर कहती है—

"रोहिणी ! हाय यह वह तीर,
बैठते आकर जहाँ वे धर्मधन, ध्रुव धीर,
मैं लिए रहती विविध पक्वान्न, भोज खीर,
वे चुगाते मीन, मृग, खग, हंस, के की कीर।"

समय पर समय वीतआ जा रहा है पर यशोधरा का दुःख नहीं वीतता उसका हृदय कचोट उठता है वह आह भर कर रह जाती है—

फलों के वीज फलों में फिर आये
मेरे दिन फिरे न हाये—
गए घन कै कै वार न घिर आये ?
ये निर्झर भरे न हाय !

इस प्रकार गुप्त जी ने यशोधरा की विरह दशाओ को चित्रित करने के लिए प्रकृति को उद्दीपन रूप में सबसे अधिक प्रयुक्त किया है।

आलंकारिक रूप:—मानव के सुन्दर अवयवों के लिए और कला में चमत्कार लाने के लिए प्रकृति को आलंकारिक रूप में प्रयुक्त किया जाता है। गुप्तजी ने भी आलंकारिक प्रणाली का प्रयोग किया है, किन्तु उसमें नीरसता का दोष नहीं आने पाया है। प्रकृति के सहारे सादृश्य मूलक अलंकार तो बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। जैसे—

'मेरे फूल रहो तुम फूले'

फूल का स्वभाव ही फूलना होता है अतः साभिप्राय फूल का प्रयोग होने से यहाँ परिभण्ड्-र अलंकार स्वतः आ गया है। इसी प्रकार—

'उलट पड़ा वह दिव-रत्नाकर
पानी नीचे ढलक रहा
तारक रत्नहार सखि उसके
खुले हृदय पर झुलक रहा'

इसमें उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है।

इस प्रकार कवि ने रूपक, उपमा, रूपकातिशयोक्ति, स्मरण, सन्देह आदि अलंकारो से प्रकृति देवी कों खूब सजाया है।

उपदेशात्मक रूप:—इसके द्वारा कवि प्रकृति के कार्य कलापों से मानव को उपदेश देता है। गुप्त जी ने प्रकृति के इस रूप की भी उपेक्षा नहीं की, यद्यपि इसका विस्तृत वर्णन वे नहीं कर सके। गौतम प्रकृति के द्वारा ही जीवन की निस्सारता का अनुभव करते हैं—

"मैं सूँघ चुका वे फूल्ल फूल
झड़ने को हैं सब झरित फूल"

यशोधरा गोतम के विपरीत, निस्सरता की छाया के स्थान पर प्रकृति में अनेक आदर्शों को देखती है—

माना ये फूल सभी झड़ते हैं
जाना ये दाड़िय आम सभी सड़ते हैं
पर क्या यो ही कभी टूट पड़ते हैं

× × ×

विकल तभी जब बीज रहित हो जाऊँ!

पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण:—मानव की भावनाओं और कार्मों की पृष्ठ भूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण होता है। इसके लिए भी कवि के पास अधिक अवकास न था, अत: एक दो स्थलों पर ही इस प्रकार का चित्रण 'यशोधरा' में मिलता है। यशोधरा राहुल को वाण से विंधे हुए हंस की कथा सुनाती है, जिसे देखकर सिद्धार्थ का मन तड़प उठा था, इसमें पूर्व पक्षियों की किलोल और कलरव से जो आनन्द आता है, उसे पृष्ठ भूमि के रूप में यशोधरा वतलाती है—

वर्ण वर्ण के फूल खिले थे
झल मल कर हिम-विन्दु झिले थे
× × ×
खाते थे खग कल-कल स्वर से
सहसा एक हंक ऊपर से
गिरा विद्ध होकर खर-शर से !

दूतिका के रूप में—यह परिपाटी अत्यन्त प्राचीन है। कालिदास में मेघ को दूत बनाया था तो हिन्दी में सूर तुलसी जायसी घनानन्द आदि ने पवन, भ्रमर खंग मृग और वायस को दूत का स्थान दिया। गुप्त जी ने भी बड़े सुन्दर ढंग से दूतिका के रूप में प्रकृति की योजना की है। यशोधरा रोहिणी नदी के द्वारा अपना संदेश प्रियतम तक पहुँचाने के लिए विनम्र निवेदन करती है—

तुझे नदीश मान दे
नदी प्रदीप दान ले
× × ×
मिलें कहीं मेरे प्रभु पथ में तू उनका सन्धान ले
× × ×
कह देना इतना ही उनसे जब उनको पहचान ले
"धाय तुम्हारे सुत की गोपा बैठी है बस ध्यान ले।"

विम्ब-प्रतिविम्ब रूप में—जहाँ प्रकृति और मानव के कार्यों में समानता दिखाई पड़ती है वहाँ प्रकृति का विम्ब-प्रतिविम्ब रूप होता है। 'यशोधरा' में इसका वर्णन भी हुआ है—

रवि पर नलिनी की, पितृ छवि पर मौन दृष्टि तव जा रही
वहाँ अंक में मधुप, यहाँ मैं, गिरा एक गुण जा रही

प्रकृति और यशोधरा दोनों में कैसा सुन्दर साम्य है। इस संवेदना के कारण ही प्रकृति यशोधरा की निकटतम सखी गन गई है।

मानवीकरण के रूप में— इसमें प्रकृति जड़ता को त्याग कर चेतना बन जाती है। उसमें मानवीय चेतना के दर्शन होने लगने हैं, अतः वह मानव रूप में चित्रित की जाती है और सम्पूर्ण मानवीय भावनाएँ उसमें दिखाई देने लगती हैं आधुनिककाल के प्रकृति चित्रण की यह सब से बड़ी विशेषता है। गुप्त जी की रचनाओं में हमें प्रकृति के इस रूप के प्रचुर दर्शन होते हैं। डा० किरण कुमारी गुप्त अपने प्रबन्ध में लिखती है—

"उन्होने प्रकृति को मानव रूप, मानव वेश-भूषा और मानव व्यापार से पूर्ण देखा है। प्रकृति में मानव की सी चेतनता और स्फूर्ति, प्रेम और सहानुभूति के उन्होंने दर्शन किए हैं। उन्होने प्रकृति में प्रेयसी अथवा वासनामय सौन्दर्य का निरीक्षण नहीं किया, प्रकृति कभी तो इनके सम्मुख माता के रूप में प्रकट होती है और कभी सखी रूप में।"

यशोधरा में वर्णित प्रकृति लेखिका के उपर्युक्त कथन की सत्यता को प्रगट कर देती है। प्रातःकालीन किरणों में कवि ने बड़ी सुन्दरता से मानव-भावना का आरोप किया है—

किरणो ने कर दिया सवेरा
हिम कण-दर्पण में मुख हेरा

अमूर्त आशा को प्रकृति के सहारे कवि ने मूर्त बना दिया है—

"नाच उठी आशा प्रति पल पर किरणों की झलमल में।"

इसी प्रकार यशोधरा रात्रि की अँधियारी को सम्बोधित करते हुए कहती है—

"निशि की अँधेरी जवनि के, चुप चेतना जब सो रही,
नेपथ्य में तेरे न जाने, कौन सज्जा हो रही।"

इस प्रकार अनेक अमूर्त भावों को कवि ने प्रकृति के द्वारा मूर्त रूप प्रदान कर दिया है।

प्रतीकात्मक रूप में :—इसमें कवि भाव-साम्य के आधार पर प्रकृति से कुछ ऐसे प्रतीक चुन लेता है जो भावों के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। जैसे उषा, प्रातः-उमंग, उत्साह का प्रतीक, प्रकाश-आशा का प्रतीक, संध्या, अन्धकार, निराशा का प्रतीक। यशोधरा खिले हुए फूलों और झरनों को देखकर उन्हें क्रमशः स्वामी के सद्भावों और अन्वेषक का प्रतीक मानकर कहती है—

"स्वामी के सद्भाव फैलकर फूलफूल में फूटे,
उन्हे खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे ॥"

'मेरे फूल रहो तुम फूले' में 'फूल' राहुल का प्रतीक है।

ईश्वरीय सत्ता की अभिव्यक्ति अथवा रहस्यात्मक रूप में— इस में कवि प्रकृति के द्वारा परमात्मा की सत्ता का अनुभव कराता है, अतएव उसका दृष्टिकोण सर्वात्मवादी हो जाता है। वास्तव में यह भी छायावादी कवियों की देन है। इसमें सबसे अधिक सुन्दर वर्णन जिज्ञासा के होते हैं। प्रकृति की विस्तृत सज्जा को देखकर मन में यह जिज्ञासा होती है कि आखिर इसके पीछे कौनसी शक्ति कार्य कर रही है? कवि सूर्य, चन्द्र, तारे, प्रातः, संध्या, निशा सबको देखकर यह प्रश्न करने लगता है कि इन सबको कौन चला रहा है, वह कौन सी शक्ति है जो इनका संचालन करती है? सृष्टि के इस चक्र के संचालक के प्रति सर्व प्रथम हमें ऋग्वेद के नारीय-सूक्त में यह जिज्ञासा मिलती है। प्रसाद ने भी 'कामायनी' में अपनी इस जिज्ञासा को प्रगट कियाहै। गुप्तजी ने भी 'यशोधरा' में सिद्धार्थ के शब्दों में सृष्टा के प्रति जिज्ञासा प्रगट की है——

घूम रहा है कैसा चक्र?
वह नवनीत कहाँ जाता है रह जाता है तक्र?

आत्मा का स्रोत क्या है, वह मृत्यु के वाद कहाँ जाती है, आदि प्रश्न सिद्धार्थ के मन में उठते हैं। यशोधरा के मन में भी यह रहस्यात्मक जिज्ञासा उत्पन्न होती जब वह रात्रि में सारी सृष्टि को सोता हुआ देखती है, तभी उसे ऐसा भान होता है कि संध्या के अँधेरे के इस पर्दे के उस पार कोई महान् सत्ता अब भी क्रियमाण है, अतएव यह पूछने लगती है उस अंधकार से—

'निशि की अँधेरी यवनिके
चुप चेतना जब सो रही।
नेपथ्य में तेरे, न जाने,
कौन सज्जा हो रही ।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुप्त जी ने आलम्बन, उद्दीपन, उपदेश अलंकार (उपमान), दूतिका तथा पृष्ठ भूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण की जो प्राचीन प्रणालियाँ थी, उन सबको—यशोधरा में चित्रित किया है और साथ ही मानवीकरण, प्रतीक और रहस्यात्मक रूपों में भी—जो आधुनिक युग के प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्तियाँ हैं—प्रकृति को अपनाया है। 'यशोधरा' में प्रकृति-वर्णन की प्रधानता नहीं है, फिर भी जितना कुछ उन्होंने किया है, उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। हाँ, वाह्य-प्रकृति के चित्रण में उनकी वृत्ति कम रमी है, अधिकतर यशोधरा आदि पात्रों की अन्तः प्रकृति का वर्णन ही उन्होंने किया है। अतएव विषय के अनुसार यशोधरा में प्रकृति के उद्दीपन-रूप को ही प्रधानता मिली है। अन्त में गुप्त जी के प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में डा० सत्येन्द्र के विचारों को प्रगट करके हम अपनी बात समाप्त करते हैं। सत्येन्द्र जी ने कहा है—

"गुप्त जी अँग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति के कवि नहीं। प्रकृति ने उनकी कलम पकड़कर नहीं लिखा, पर वे प्रकृति और मनुष्य दोनों के प्रतिनिधि बने हैं और एक सदय कवि की तरह उन्होंने प्रकृति और मनुष्य में सामञ्जस्य स्थापित किया है। सामञ्जस्य उनका लक्ष्य है। प्रकृति की अवहेलना नहीं की, उसे बिलकुल नगण्य नहीं समझा। उसको न बिलकुल जड़ समझा और न चेतना से मुक्त मनुष्य से भी बढ़कर। उनकी कला की यह विशेषता है कि उन्होंने प्रकृति के कोमल व्यापारों का ही संकलन किया है। उनकी प्रकृति कोमल हृदय वाली धाय की भाँति है जो मनुष्य को जीवन की प्रेरणा, स्फूर्ति और नवीन उमंग देती है—फिर भी उसे आदेश देने और उस पर शासन करने में असमर्थ है।"

प्रश्न १० :—'यशोधरा' द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक शैली और छायावादी काव्य सौंदर्य दोनों का अपूर्व युग की शुष्कता है वहाँ

छायावादी काव्य का सौंदर्य भी।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं। तर्क पूर्ण उत्तर दीजिए। (V. Imp.)

अथवा

'यशोधरा' में छायावाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है और इस प्रभाव के ही कारण 'यशोधरा' सुन्दर काव्य बन गया है।' इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना मत दिजिए। (V. V. Imp.)

उत्तर—हिंदी साहित्य का वह युग जिसमें 'यशोधरा' का सृजन हुआ, द्विवेदी जी द्वारा प्रदर्शित इतिवृत्तात्मक कविता का युग था। गुप्त जी भी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि होने के नाते इस प्रभाव से अछूते न रह सके। पर उस समय छायावादी युग का शंखनाद भी हो चुका था। गुप्त जी उससे भी न वच सके। अतः 'यशोधरा' में जहाँ द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता है वहाँ छायावादी कविता का पूर्ण सौंदर्य विद्यमान है। अस्तु, यदि हम इसे दो विचार धाराओं का संगम कहें तो अधिक समीचीन प्रतीत होगा। दोनों ही प्रकार की शैलियाँ 'यशोधरा' में मिलती हैं। सर्व प्रथम इतिवृत्तात्मक कविता की दृष्टि से हम 'यशोधरा' को देखेंगे।

इतिवृत्तात्मक कविता में कथा प्रधान होती है, केवल छंदों के द्वारा वह व्यक्त की जाती है, छंद एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। इस प्रकार कथा एक निश्चित क्षेत्र में बँधी रहती है। कल्पना का प्रयोग इसमें गौण रूप से ही होता है। कवि तटस्थ होकर एक कथा कहता चलता है, अपने हृदय की अनुभूति को वह पूर्णतन्मयता के साथ व्यक्त नहीं कर पाता, अतएव इस प्रकार के काव्य में व्यंजकता का अभाव और वर्णनात्मकता का बाहुल्य रहता है। दूसरे शब्दों में इतिवृत्तात्मक काव्य की शैली को वर्णनात्मक कहा जा सकता है। भावात्मकता उसमें कहीं कहीं भले ही मिल जाय पर भावों का तरंगाघात नहीं मिल पाता! यही कारण है कि इतिवृत्तात्मक काव्य रूक्ष हो जाता है। संस्कृति तत्सम, परिमार्जित तथा व्यावहारिक भाषा के प्रयोग के कारण यह रूक्षता और अधिक बढ़ जाती है।

द्विवेदी जी ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करना चाहते थे।

उन्होंने खड़ी बोली में जब शब्दों का अभाव देखा तो संस्कृत से शब्द लेने आरम्भ कर दिए और अन्य कवियों को भी इसके लिए प्रोत्साहित किया। काव्य के क्षेत्र में वे शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करना ही उचित समझते थे। यदि कोई कवि तनिक भी उनके इस अनुशासन से विचलित हुआ तो उन्होंने उसे पथ-भृष्ट की उपाधि दे डाली। गुप्त जी द्विवेदी जी के पद चिन्हों पर अक्षरशः चलने वाले कवि रहे हैं। उन्होंने द्विवेदी जी को अपना काव्य-गुरु भी माना है। अतएव उनकी प्रत्येक रचना में द्विवेदी जी के आदेश का प्रत्यक्ष या परोक्ष निर्वाह हुआ है। अस्तु,

'यशोधरा' में कवि आधुनिकता से अत्यधिक प्रभावित होने पर भी इतिवृत्तात्मकता के प्रति अपने मोह को नहीं छोड़ सका है। कथा को निरन्तर आगे बढ़ाने की धुन इसमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। इसी कथात्मकता के कारण उनके गीतों में वह भाव प्रवणता और आत्माभिव्यञ्जना प्रगट नहीं हो सकी है जो कि अपेक्षित थी। इसके विपरीत जहाँ जहाँ कवि ने परिस्थिति की सज्जा के लिए वर्णन किए हैं वे अधिक वेगमय बन पड़े हैं। 'यशोधरा' "महाभिनिष्क्रमण'—अंश उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। वस्तुतः, वर्णन करने में गुप्तजी की शैली जितनी अधिक सफल होती है, व्यंजित करने में उतनी नहीं।

'यशोधरा' का विभिन्न शीर्षकों में विभाजन भी इतिवृत्तात्मक शैली के प्रति कवि का आग्रह प्रगट करता है। प्रकृति वर्णन की ऋतु-वर्णन, उद्दीपन आदि पुरानी प्रणालियों को ही गुप्तजी ने अपनाया है, क्योंकि कथा की वृद्धि में प्रकृति का ऐसा प्रयोग सहायक होता है। भाषा के प्रयोग में गुप्तजी ने व्यावहारिकता का ही अधिक ध्यान रखा है, कवित्व का कम। इसलिए उनकी भाषा लालित्य और लचक से हीन है। वर्णनात्मक काव्य के लिए तो ऐसी भाषा उचित है पर ध्वन्यात्मक काव्य में वह बाधा बन जाती है। छन्दयोजना के प्रति भी गुप्तजी का पुराना आग्रह रहा है। 'यशोधरा' में इसीलिए कवि ने कवित्त रोला, हरिगीतिका आदि छन्दों के प्रयोग किए हैं। प्राचीन कथन-पद्धति को न छोड़ सकने के कारण 'यशोधरा' की गीतियाँ भी आधुनिक गीतकाव्य का स्थान नहीं प्राप्त कर सकीं। संक्षेप में ये सारी बातें यह सिद्ध करती हैं कि 'यशोधरा' में इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण किया गया है।

किन्तु, 'यशोधरा' के रचना-काल में इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ होगई थी, छायावाद उसी के परिणाम स्वरूप आ रहा था। गुप्तजी नवीनता के प्रति उत्पन्न होने वाले इस स्वाभाविक आकर्षण से नहीं बचे, अतः उन्होंने छायावादी शैली को अपनाकर अपनी इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति को सुन्दर बनाने की चेष्टा की है और 'यशोधरा' में वे इस दृष्टि से पर्याप्त सफल हुए हैं। यही कारण है कि 'यशोधरा' एक अनूठा काव्य बन गया है। अब हम 'यशोधरा' में छायावादी प्रभाव को देखेंगे।

हम पहले कह चुके हैं कि जिस समय 'यशोधरा' लिखी जा रही थी, उस समय तक छायावाद की भूमिका बन चुकी थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताञ्जलि' से प्रभावित होकर हिन्दी काव्य-क्षेत्र में भी नवीन भावनाओं और नवीन शैली का कवियों ने सूत्रपात किया। प्रसाद, पन्त और निराला इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। गुप्त जी भी इनके समकालीन होंने के नाते इनके प्रभाव से न बच सके। यद्यपि गुप्त जी का क्षेत्र अलग था, पर छायावदी कविता के सम्मोहन से उनकी कविता भी बंचित न रह सकी। उनको हम छायावादी कवियों के अन्तर्गत तो नहीं रख सकते, पर उनकी कविता में छायावाद का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। 'साकेत' में भी गुप्त जी ने छायावादी शैली को अपनाने का प्रयास किया और 'झंकार' तथा 'मंगलघट' में यह प्रयास इतना सफल हुआ कि ये दोनों कृतियाँ छायावादी विशेषताओं से पूर्णतया सम्पन्न हो गई। 'झंकार' के बाद 'यशोधरा' लिखी गई। इसमें गुप्त जी ने प्राचीन और नवीन को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया और कुछ अंशों तक निस्सन्देह उसे सफलता भी मिली। प्राचीन शैली की दृष्टि से हम 'यशोधरा' पर विचार कर चुके हैं, यहाँ हमें नवीन शैली की दृष्टि से उसे देखना है।

इससे पूर्व कि हम 'यशोधरा' पर छायावाद के प्रभाव को परखें, छायावाद की प्रमुख विशेषताओं को समझना आवश्यक है। दो दृष्टियों से ये विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं—विषय पक्ष की दृष्टि से तथा शैलीपक्ष की दृष्टि से। छायावादी कविता के विषयपक्ष की पहली विशेषता आत्मपरकता है। इसमें कवि अपने हृदय के भावों को ही अभिव्यक्ति करता है, अर्थात् उसकी कविता का माध्यम अन्तर्गत होता है, वाह्यजगत का यदि वह वर्णन करता भी है तो अपने

हृदय का अंग मानकर, अपनी भावना, भापना और अनुभूति में रंग कर उसका चित्रण करता है। द्वितीय विशेषता अन्तर्प्रकृति और वाह्यप्रकृति में तादात्म्य-भाव है। अर्थात् विश्व के विविध दृश्यों के साथ छायावादी कवि अपने हृदय का सामंजस्य कर देता है। इस अभेद की स्थिति में चंदा, नक्षत्र-तारे, हिमानी, वसंत, शरद आदि से नाता जोड़कर आत्मनिवेदन करता है, उस समय प्रकृति के विभिन्न अवयव उसके जीवन के अंग बन जाते हैं, इस रूप में प्रकृति भी मानव-व्यापार करने लगती है।

शैलीपक्ष की दृष्टि से छायावाद की चार प्रमुख विशेषता हैं—रागात्मकता, लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत योजना तथा छंदों के प्रयोग में स्वच्छंद मनोवृत्ति मुख्यतया प्रवृतियों का प्रयोग। छायावाद में सबसे अधिक रागात्मकता पर बल देते हैं। उसमें भावतत्व की प्रधानता होती है। अतएव छायावादी कवि अभिव्यंजना शैली को अपनाता है। इसमें कवि सूक्ष्म-विषय को लेकर अमूर्त की योजना करके उसकी अभिव्यक्ति करता है, इसलिए लाक्षणिक वैचित्र्य और प्रतीक योजना का प्रयोग करना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके द्वारा कवि हृदयगत भावों का वर्णन करने में समर्थ होता है। अवर्णनीय और गम्भीर भाव-विन्दु लक्षण के द्वारा सहज ही व्यक्त हो जाता है।

प्रतीक-योजना साम्य के आधार पर होती है, यह साम्य तीन प्रकार का होता है—रूप-साम्य, गुण-साम्य और प्रभाव-साम्य। साम्य को ध्यान में रखकर कवि प्रतीकों को अपनाता है और उनके सहारे अपनी जटिल भावावली को प्रगट करता है। छन्दों की दृष्टि से छायावाद स्वछन्द मनोवृत्ति का माना गया है, उसकी रुचि किसी छंद विशेष तक सीमित नहीं रहती, किन्तु आत्मपरक भावों की गम्भीर, सूक्ष्म और रागात्मक अभिव्यक्ति सबसे अधिक गीतियों में ही सम्भव होती है, अतः छायावादी कवि गीतियों को सबसे अधिक स्वीकार करता है। वैसे छंदों के बन्धन से छायावादी कवि मुक्त ही रहता है।

'यशोधरा' छायावाद की उपर्युक्त सभी विशेषतायें एक सीमा तक मिल जाती हैं। कवि षड्ऋतुओं का वर्णन करता है किन्तु उनमें आत्मपरक भावों का ही अधिक विश्लेपण हुआ है—

'सखि बसन्त से कहाँ गये वे,
मैं उष्मा सी यहाँ रही।'

इस नीति में छायावादी शैली का पूर्ण प्रभाव है, यहाँ मूर्त के लिए अमूर्त की योजना भी की गई है। वाह्य प्रकृति से अन्तः प्रकृति का तादात्म्य भी हुआ है। इस प्रकार के अनेक नीति यशोधरा में भरे पड़े हैं।

(१) 'कूक उठी है कोयल काली'
(२) 'सती शिवा सी तपस्विनीयाँ देख दिवा यह आरही'
(३) 'मरण सुन्दर बन आया री' —आदि गीत

उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें प्रकृति के चित्रों द्वारा मानव-हृदय का प्रकृति के प्रति साम्य प्रगट किया गया है। गुप्त जी का ध्यान प्रकृति-व्यापारों के साथ मानव हृदय की समता पर विशेष रूप से केन्द्रित है। उन्होंने मानव-हृदय के भीतर सोई हुई वेदना के मेघों के सदृश घनीभूत अश्रु-विन्दुओं के रूप में बरसने तक के समस्त क्रिया-व्यापारों को प्रकृति के क्रिया-व्यापारों का ही प्रतिरूप समझा है। इतना ही नहीं, कवि ने मेघों को सृष्टि द्वारा वोए हुए स्मृति के वीज कह कर अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय भी दिया है—

"जागी किसकी वाष्पराशि जो सूने में सोती थी ?
किसकी स्मृति के वीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी ?"

कवि की नवीन दृष्टि का परिचय इन पंक्तियों में पूरी तरह मिल जाता है—

"उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल पल में
शरदातप उनके विकास का सूचक है जल थल में"

इन पंक्तियों में कवि ने शरद-ऋतु का वर्णन करते हुए शरद-कान्ति को शान्ति की कान्ति के रूप में और शरदातप को गौतम के तप के विकास के रूप में दिखाया है। इसी प्रकार शिशिर का वर्णन करते हुए गुप्त जी शिशर की ठण्डी हवा तथा यशोधरा के शीतल उच्छ्वासों में साम्य दिखलाते हैं।

छायावादी कवि प्रकृति को रमणी का रूप प्रदान करके उसके विभिन्न रूपों में रमणी के शरीर के अनेकानेक अंगों की कल्पना करते हैं। इस प्रकार प्रकृति में जीवन का संचार करके कवियों ने उसका मानव से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। गुप्त जी पर इसी प्रभाव को देखिए—

"निशि की अँधेरी जवनि के चुप चेतना जब सो रही,
नेपथ्य में तेरे, न जाने, कौन सज्जा हो रही;
मेरी नियति नक्षत्र-मय ये बीज अबभी वो रही,
मैं भार फल की भावना का व्यर्थ अब भी ढो रही?"

अब शैली पक्ष की दृष्टि से 'यशोधरा' पर छायावाद के प्रभाव को देखना है। इसमें सर्वप्रथम लाक्षणिक वैचित्र्य आता है, क्योंकि और मर्मस्पर्शी भावों की व्यंजना लक्षण-शक्ति के द्वारा ही सफलता से हो सकती है। 'यशोधरा' में गुप्त जी ने प्रारम्भ से ही इस शक्ति को अपनाया है। लाक्षणिकता का समावेश हो जाने से उसके भावों में तीव्र वेग आ गया है और काव्य-सौंदर्य छलक पड़ा है। कुछ उदाहरण देखिए—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"

यहां 'आँचल में है दूध' मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न करता है, अतएव लक्षण से इसका अर्थ होगा 'जननी के स्तन में दूध होना'। इस प्रकार वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में समीप्य सम्बन्ध है, इसलिए यहाँ शुद्ध लक्षण है। इसी प्रकार—

'जाग दुःखिनी के सुख जाग'

—में कवि विधुरा यशोधरा के एक मात्र आधार और सुख राहुल की ओर संकेत करता है। अतः यहाँ भी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में कार्य-सम्बन्ध होने से लक्षण है। इसी प्रकार 'चंचलपन, जीवनपन, व्यथा-विनोदन आदि शब्द भी लक्षणा के द्योतक हैं। किन्तु, इस दृष्टि से निम्नलिखित गीत सबसे अधिक सुन्दर बन पड़ा है—

'रुदन का हँसना ही तो मान'

यहाँ 'हँसना' से तात्पर्य अधिकता अथवा व्यापकता से है, अर्थात् रुदन के आधिक्य या तीव्र वेदना के कारण गीत फूट पड़ते हैं। यह सादृश्य-सम्बन्ध ही यहाँ लक्षण की सृष्टि करता है।

इस प्रकार के लाक्षणिक वैचित्र्य के उदाहरण यशोधरा में भरे पड़े हैं, जिनसे भावो में तीव्रता और अभिव्यक्ति में स्वतः चमत्कार आ गया है।

छायावादी शैली की दृष्टि से दूसरी विशेषता है व्यंग्य वैचित्र्य का प्रयोग। व्यंग्य और वक्रोक्ति के द्वारा काव्य में चमत्कार आ जाता है। इस सम्बन्ध में तीन शब्दशक्तियों के प्रयोगों पर थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है। शब्द शक्तियाँ तीन है—अभिधा, लक्षण और व्यंजना। अभिधा का कार्य साधारण अर्थ को प्रगट करना होता है, अतः इसमें कोई चमत्कार नहीं होता। चमत्कार की दृष्टि से लक्षण और व्यंजना का ही अधिक महत्व है। 'यशोधरा' में इन दोनों का प्रयोग हुआ है।

"कादम्बिनी प्रसवकी पीड़ा हंसी तनिक उस ओर।
क्षिति का छोर छू गई सहसा वह बिजली की कोर ॥"

कैसा मर्मस्पर्शी व्यंग्य है! जिस प्रकार एक स्त्री को प्रसव-पीड़ा के पश्चात् पुत्र की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार विद्युत की उत्पत्ति तब होती है जब कादम्बिनी को प्रसव के समान प्राणान्तक पीड़ा होती है। यह सारा अर्थ एक 'हँसी' शब्द में समा गया है—

इसी प्रकार— "स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम के प्राणों के पल में,
हमीं भेज देती हैं रण में, क्षात्र धर्म के नाते।"

तथा— 'अब कठोर हो वज्रादीप ओ कुसुमादपि सुकुमारी।'

आदि पंक्तियों सुन्दरतम व्यंग्योक्तियाँ भरी पड़ी हैं।

शैली की दृष्टि से छायावाद की तीसरी विशेषता प्रतीकात्मक योजना का प्रयोग है। 'यशोधरा' में गुप्त जी ने यथास्थान प्रतीकों का भी प्रयोग किया है और वे प्रतीक दुरुह न होकर मार्मिकता के साथ भावों को सरल अभिव्यक्ति करते हैं। अतः इनसे यशोधरा के काव्य-सौन्दर्य में और अधिक वृद्धि हुई है। जैसे 'गीत के लिए रुदन का हंसना' और हृदय की उमड़ती हुई वेदना की लहरों के लिए 'हृत्तन्त्री की तान' जैसे सुन्दर और नवीन प्रतीक चुने गए हैं। यशोधरा' में कवि ने ऐसे अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है—

'हाँ गोपा का दूध जमा है राहुल मुख में तेरे।'

यहाँ 'जमा हुआ दूध' रूप-साम्य से दाँतो का प्रतीक है।—तथा

'तप मेरे उद्धव का मोहन धूल उड़ाता आया'

इसमें तप संदेश वाहक का प्रतीक है और मोहन यशोधरा के प्रति गौतम का प्रतीक है।

छंद-विधान की दृष्टि से भी 'यशोधरा' में छायावाद का प्रभाव प्रगट हुआ है। छायावादी कविता में गीतों का विशेष महत्व है। 'यशोधरा' में कवि ने इसीलिए अधिकतर गीतो में अपने भाव प्रगट किए हैं, उनमें भाव सौन्दर्य की दृष्टि से कुछ गीत तो वेजोड़ हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि 'यशोधरा' इतिवृत्तात्मकता और छायावाद, दोनो शैलियों के दर्शन हो जाते हैं। किन्तु, द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि होने के नाते गुप्त जी की 'यशोधरा' छायावाद सीमा का केवल स्पर्श ही कर सकी है, अवगाहन नहीं। फिर भी जहाँ कही भी गुप्त जी का कवि सजग है, वहाँ हमें काव्यगत सौन्दर्य के चरम उत्कर्ष के दर्शन होते हैं।

प्रश्न ११—'यशोधरा की वाणी में नवयुग का कण्ठ बोल रहा है।' 'यशोधरा' के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए। (V. Imp.)

अथवा

'यशोधरा' का कवि पराजयवादी भावना का मूलोच्छदन करके आशा वादिता के पक्ष का पोषण करता है।' इस उक्ति को सिद्ध कीजिए।

अथवा

'गुप्तजी की यशोधरा आशावाद का प्रतीक है।' इस कथन पर विचार कीजिए। (Imp)

अथवा

'यशोधरा में कवि का एक निश्चित सन्देश है और वह गौतम के मुख से न होकर यशोधरा के मुख से सस्वर हो उठा है।' इस उक्ति की मीमांसा कीजिए।

अथवा

'यशोधरा की रचना के मूल में कवि का कौन सा उद्देश्य रहा है?

क्या वह उस उद्देश्य की रक्षा कर सका है ? (Expected in 1958)

उत्तर—कला के सम्बन्ध में गुप्तजी का सदैव से यह दृष्टि-कोण रहा है कि उसकी अभिव्यक्ति केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं होती है, प्रत्युत् उसके भीतर कुछ सउद्देश्य भी होते हैं, जिन्हें प्राप्त कर पाठक तृप्ति का अनुभव करता है। इसलिए निरुद्देश्य कला का महत्व उन्हें स्वीकार नहीं। वे कहते भी हैं—

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

× × ×

मानते हैं जो कला के अर्थ ही
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।"

इसी कसौटी के अधार पर गुप्तजी की कला की अभिव्यक्ति हुई है। अतएव उनकी प्रत्येक रचना में कोई न कोई उद्देश्य सन्निहित रहता है। वस्तुतः गुप्त जी जीवन और जगत के कवि हैं। जीवन के प्राचीन संस्कारों पर नवीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता ही है, इसी से उन्होंने एक सफल कलाकार की भाँति प्राचीनता की नीव पर नवीनता का प्रासाद खड़ा किया है। भारतीयता, राष्ट्रीयता और मानवता की पूजा करने वाले कवि की ऐसी ही सृष्टि होती है। उनकी समस्त रचनाओं को लेकर हम देख सकते हैं कि उन सब में उदात्त करने के सन्देश हैं, उन सन्देशों में आशा का अमृत है और आशा के प्रत्येक रूप में भारतीय तत्व विद्यमान है। 'यशोधरा' भी उनकी इसी प्रकार की रचनाओं में से एक है। यहाँ हम उसके प्रमुख उद्देश्य और संदेशों का संक्षेप में विश्लेषण करेंगे, परन्तु इससे पूर्व आधुनिक काव्य की मुख्य प्रवृत्ति को समझना आवश्यक है।

आधुनिक काव्य में नारी के अश्रुओं तथा उसकी आशा आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है। 'प्रियप्रवास' की राधा, 'साकेत' भी उर्मिला, 'यशोधरा' की यशोधरा 'कामायनी' की श्रद्धा और इड़ा तथा 'युगवादी' और 'युगान्त' में नारी की महिमा के प्रति प्रगट किया हुआ संभ्रम, इस बात के प्रमाण हैं कि इस युग का कवि नारी के महत्व को समझ कर स्वयं को पराजित अनुभव करता है, वह पूर्व युगों में नारी के प्रति उपेक्षा व अनादर के इतिहास को पढ़कर जैसे अब प्रायश्चित करने को प्रस्तुत है, लगता है कि कवि के रूप में नवीन युग

का पुरुष अबतक की दबी हुई स्नेह और आदर की भावनाओं को नारी के समक्ष समर्पित कर रहा है, जैसे कि प्राचीन व मध्ययुग के पुरुष का मस्तक आधुनिक नारी के सामने झुक रहा है। किन्तु, आधुनिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति, नारी की शरीर-यष्टि को नापना नहीं, अपितु उसकी भावनाओं का विश्लेषण है, सो भी तटस्थ होकर नहीं, उसके प्रति करुणा का भाव रखकर पूरी सहानुभूति के साथ। आज का कवि प्राचीन नारी-पात्रों की खोज करता है, जिन जिन नारियों के प्रति अत्याचार हुआ है उनके आँसुओं की एक-एक बूँद को मोतियों के समान एकत्र करता है और उन आँसुओं की निधि को आज के पुरुष को भेंट करता है। मानों वह कह रहा है कि 'पुरुषों' नारी के दमन और उत्पीडन का इतिहास इन आँसुओं में छिपा है; यह तुम्हारे अत्याचार की निशानी है।'

सर्व प्रथम रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उपेक्षिता नारी-पात्रों की ओर कवियों और लेखकों का ध्यान आकर्षित किया था। तत्पश्चात् महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता" नामक प्रसिद्ध निबन्ध लिखा। उनके इसी संकेत पर गुप्त जी ने 'साकेत' में राम और सीता को काव्य का नायक न बनाकर उर्मिला को प्रमुखता दी, इसीलिए शायद उन्होंने उसका नाम 'रामायण' न रखकर 'साकेत' रखा क्योंकि १४ वर्षों तक निरन्तर आँसू बहती हुई उर्मिला साकेत में ही सिसकती रही थी। किन्तु, कवि को इतने से ही सन्तोष न हुआ, वह जितनी सहानुभूति और सद्भावना को उडेलना चाहता था, उतने के लिए उसे अवसर नहीं मिल सका, क्योंकि चौदह वर्ष के पश्चात् उर्मिला का वियोग समाप्त हो गया और उसके सारे दुःख सुख में बदल गए। अतएव कवि ने चिर विरहिणी यशोधरा को अपने काव्य का विषय बनाया। यहाँ उसे नारी की करुण कहानी कहने के लिए व्यापक क्षेत्र मिल गया और उर्मिला के कोई संतान न होने से नारी का जो पूर्ण रूप वह 'साकेत' में नहीं खींच सका था, उसे यशोधरा की गोद में राहुल को पाकर चित्रित कर दिया। इस प्रकार 'यशोधरा' का मुख्य उद्देश्य 'नारी की कसक और टीस की अभिव्यक्ति करके उसके प्रति पूर्ण सहानुभूति उत्पन्न करना तथा उसकी पूर्णता और उपयोगिता का उद्घाटन करना' है। दूसरे शब्दों में कवि ने इस रचना से एक उपेक्षित चरित्र का उद्धार किया है। इस चरित्र में नारी के नारीत्व और पत्नीत्व की शोभा तथा गर्व को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया

है, जो कि अब तक लेखकों की दृष्टि में छिपा हुआ था। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि इस उद्देश्य की भूमिका हमें 'साकेत' की उर्मिला के चित्रण में ही मिल जाती है। कवि ने कहा भी है—

"भगवान बुद्ध और उनके अमृत तत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो चार आँसू ही तुम्हें इसमें मिल जायँ तो बहुत समझना और उनका श्रेय भी 'साकेत' की उर्मिला देवी को ही है, जिन्होंने कृपा पूर्वक कपिल वस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया है। हाय ! यहाँ भी वही उदासीनता ! अभिताप की आभा में ही उनके भक्तों की आँखें चौंधिया गई और उन्होंने इधर देखकर भी न देखा।"

सत्य ही तो है, गौतम बुद्ध के गीत तो देश-विदेश के कितने ही कवियों ने गाए हैं किन्तु गर्विणी गोपा की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता का अनुभव करके मैथिलीशरण गुप्त जैसा कवि ही कह सका कि—

"गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको',

नारी पति के द्वारा उपेक्षित होने पर भी अपने पत्नीत्व तथा जननीत्व पर किस प्रकार गर्व कर सकती है और उस गर्व के भीतर उपेक्षा से उत्पन्न दाह किस प्रकार चुपचाप उसे निरीह और अशान्त बनाता है तथा किस प्रकार नारी अपने बन्धनों से स्वतन्त्र होने के लिए छटपटाती हुई नाना अन्तर्द्वन्द्वों में झूलती रहती है, 'यशोधरा' का मुख्य वर्ण्य विषय यही है।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्णता के द्वारा जहाँ एक ओर कवि समाज में नारी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना चाहता है, वहाँ दूसरी ओर यह महान् संदेश भी देता है कि 'नारी का व्यक्तित्व आदरणीय है, वह केवल प्रेयसी नहीं है, वह देवि है, माँ है, सहचरि है और साथ ही प्राणोपम प्रेयसी भी है।'

ऊपर हम 'यशोधरा' की रचना के मुख्य उद्देश्य को खोजने के लिए आधुनिक युग की एक प्रवृत्ति का उल्लेख कर चुके हैं और वह प्रवृत्ति थी नारी के सम्बन्ध में जागरूक दृष्टि कोण। इस कल्याण कारी प्रवृत्ति का कवि ने पूरी तरह प्रतिनिधित्व किया है, यह हम देख चुके हैं। किन्तु, इस समय समाज में एक दोष भी उत्पन्न हो रहा था। राजनीतिक एवं सामाजिक निराशाओं के कारण मानव-जीवन में

व्यापक अकर्मण्यता और उदासीनता व्याप्त हो रही थी अतएव इस युग का कवि भी छायावाद के रूप गार्हस्थ्य जीवन के कष्टों से भयभीत होकर पलायनवादी बन रहा था, परन्तु गुप्त जी जैसा 'शिव' की स्थापना करने वाला युगदृष्टा कवि इस अनर्थ को कैसे सहन कर सकता था ? अतएव उन्होंने गौतम के रूप में निराशा और पलायन वादी भावनाओं का खण्डन करके जनता में जीवन और जगत के प्रति आशावाद का अमर संदेश दिया। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पुनीत संदेश एक नारी (यशोधरा) के द्वारा दिया गया है, पुरुष तों इस जगत को 'श्वेत के साथ श्याम' मानकर जड़ प्रवृति की शरण में जा बैठा था। उसके लिए इससे बढ़कर लज्जा की बात और क्या होगी कि एक नारी उसे सन्मार्ग दिखलाए जिसे वह अबतक 'अबला' कहता चला आ रहा था। इस तीखे व्यंग्य द्वारा कवि ने छायावादी कवियों और समाज की बंद आँखें खोल कर 'यशोधरा' में 'शिव' की स्थापना की है। इसमें कवि ने समस्त व्यावहारिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके आत्म-संयम, आदर्श-पालन एवं गार्हस्थ्य जीवन की महत्ता की घोषणा की है और साथ ही निरन्तर यह मंगल कामनाणी है कि निराशा और आकर्मण्यता का कल्मष आशा और उत्साह के जल से धुलकर जगत को आनन्दमय जीवन प्राप्त हो—

"आशा से आकाश थमा है, श्वास तन्तु कब टूटे ?
दिन मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे।"

कवि का कैसा सुन्दर विश्वास है कि यदि नियम-संयम से रहा जाय तो सारी व्याधियो पर विजय की जा सकती है—

"यदि हममें अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियां रहें स्वस्थता सम है।"

जिस दिन जनता इन नियम-संयमों का पालन करने लगेगी, उस दिन से उसके जीवन में स्वत: आनन्द का सागर उमड़ आएगा और तब व्ह यशोधरा के स्वर में स्वर मिला कर मुक्ति का तिरस्कार करते हुए झूम झूमकर गा उठेगी?—

"निज बन्धन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ,
कह मुक्ति भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ ?"

जब यह भावना सारे समाज में व्याप्त हो जाएगी, तब गौतम बुद्ध और

गौरांगदेव जैसे एकांगी दृष्टिकोण वाले पलायनवादी व्यक्ति को अपनी भूल स्वीकार करके समाज के समक्ष पराजय माननी ही पड़ेगी। इस महान आशावाद की पुनीत गंगा को कवि ने 'यशोधरा' में प्रवाहित किया है। गौतम को अन्त में अपनी दुर्वलता स्वीकार करनी ही पड़ी, चाहे उसका परिणाम वाद में अच्छा ही सिद्ध हुआ—

"....दुर्वल ही था गोतम छिपकर गया निदान।"

इस एक पंक्ति में ही कवि ने पलायनवाद को जी भर कर कोस लिया है और साथ ही गौतम के मुख से उसका तिरस्कार कराकर भूल भी स्वीकार करा दी है। इस एक वाक्य में ही यशोधरा को जीत छिपी है, जिसके सामने 'वुद्ध' गौतम को घुटने टेक देने पड़े।

अन्त में निष्कर्ष देने से पूर्व हम एक वात और कहना चाहते हैं और वह गुप्त जी का राष्ट्र-प्रेम। अपनी प्रत्येक रचना में अवसर पाते ही वे इस सम्वन्ध में कुछ न कुछ कहकर अपने हृदय के उफान को शान्त करते हैं। 'यशोधरा' यद्यपि विषय और उद्देश्य की दृष्टि से एक भिन्न प्रकार की कृति है, परन्तु कवि ने इसमें भी अवसर निकाल कर दासता की वेड़ियों में जकड़े हुए भारतीय के यौवन को ललकारा है—

"वोल युवक, क्या इसीलिए है,
यह योवन अनमोल हाय ?

ध्वनि से इसमें छिपा हुआ कवि के मन का आक्रोश प्रगट हो जाता है इसी प्रकार वे सारी भारतीय जनता को गौतम के शब्दों में यह चेतावनी देते हैं कि जव तक तुम अपनी वर्तमान परिस्थितियों से संघर्ष करके विदेशो शासकों का विरोध नहीं करोगे, तव तक तुम्हारे संकटों की समाप्ति नहीं होगी—

"पिसो, पड़े हो इसमें जव तक, क्या अन्तर आया है अव तक,
सहें अन्ततोगत्वा कव तक, हम इसकी गतिवक्र ?"

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'यशोधरा' में एक ओर जहाँ कवि का मुख्य उद्देश्य सम्पन्न हुआ है, वहाँ दूसरी ओर उसमें नवयुग का कंठ भी बोल रहा है और इसके साथ साथ निराशा और अकर्मण्यता की भर्त्सना करके इसमें

आशावाद का तीव्र स्वर भी झंकृत है। एक शब्द में हम कह सकते हैं कि यही अमर सन्देश 'यशोधरा' के सुन्दर बोल हैं।

प्रश्न १२—'यशोधरा' के काव्य-सौन्दर्य पर एक सुन्दर निबन्ध लिखिए।

अथवा

" 'यशोधरा' भाव-पक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से पूर्ण सफल और सुन्दर काव्य है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

'यशोधरा' में गुप्त जी की कला निरख उठी है।' इस उक्ति का विस्तृत विवेचन कीजिए।

उत्तर—हिन्दी-साहित्याकाश में श्री मैथिलीशरण गुप्त जगमगाते नक्षत्र के समान देदीप्यमान हैं। अपनी महान सृजन-शक्ति के द्वारा उन्होने अनेक ग्रन्थ-रत्नो को प्रदान कर हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरा है। उनकी गौरवमयी काव्य-प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि वह निरन्तर नवनवोन्मेपशालिनी है और ओत-प्रोत है भारतीय भावना से। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा युगीन चेतना उनके काव्य में साकार हो उठी है, इसी दृष्टि से उनके अनेक ग्रन्थ विश्व-साहित्य में शीर्प स्थान प्राप्त करने के योग्य हैं। भाव, भापा और विधान की दृष्टि से वे युग परिवर्तन करने वाले क्रान्तिकारी कवि है। विपय-वस्तु, और अभिव्यक्ति की दृष्टि से वे जितने महान हैं उतने ही सरल हैं। मैथ्यू आॅर्नल्ड ने एक स्थान पर लिखा है कि "कवि की प्रतिभा की प्रथम परीक्षा ही यह है कि वह महान काव्य के लिए महान विपय ही चुने।"

गुप्त जी कृतियो पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उनको छोटी से छोटी कृति भी महानता से अपूर्ण है, किन्तु उनके कुछ ग्रन्थ तो इस दृष्टि से सदैव के लिए ऐतिहासिक होती है। जैसे, 'भारत-भारती' ने यदि दासता की तन्द्रा में ऊँवती हुई जनता की धमनियो में देशभक्ति के जोश से सने हुए खून का नव-सञ्चार किया, 'साकेत' ने उर्मिला के अश्रुजल से भिगोकर साकेत की शुष्क-

स्मृति को हराकर दिया तो 'यशोधरा' ने युगों-युगों से भटकी हुई नारी के अस्तित्व के लिए हाहाकार मचादिया। वस्तुतः 'यशोधरा' में कवि की प्रतिभा अपनीसम्पूर्ण कलाओं के साथ दमक उठी है। बुद्धि-तत्व, रागात्मकतत्व और कल्पना-तत्व-काव्य के इन तीनों मुख्य उपादानों के सुन्दर समञ्जस्य से 'यशोंधरा' को सजाया गया है, अतः यह कवि की अभूतपूर्व रचना है। हम यहाँ उसके काव्य-सौंदर्य का क्रमशः विश्लेषण करेंगे।

'यशोधरा' में विषय-प्रतिपादन—

मैथ्यू आर्नल्ड का कथन है कि "कवि की प्रतिभा की सबसे पहली परीक्षा यह है कि वह महान् काव्य के लिए महान् विषय ही चुने।" गुप्त जी ने महान् विषय-चयन की उपयोगिता को साकेत में स्वीकार करते हुए कहा है—

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥"

'यशोधरा' का विषय भी गम्भीर और प्रभावशाली है। 'बुद्धि चरित' का रचयिता अश्वघोष भी यशोधरा की जिस गरिमा को स्पष्ट नहीं कर सका, उसी कों गुप्त जी ने अपनी कृति का विषय बनाया है 'यशोधरा' की पहली विशेषता यशोधरा के चरित्र का उद्घाटन है जों नवीनता और महानता से सम्पन्न है। कहना न होगा कि यशोधरा का चरित्र स्वयं ही अपने में एक काव्य है, अतः कवि की सफलता की सम्भावना सहज ही हो जाती है। महान और आदर्श पात्रों के प्रति समाज में पहले से ही जो श्रद्धा-भाव रहता है, वह तब और अधिक प्रभाव-वर्धक बन जाता है जब वे पात्र कवि के विषय बन जाते हैं। बुद्ध और यशोधरा के प्रति समाज की इस भावना को कवि ने खूब पहचाना। अतः विषय-चयन की दृष्टि से 'यशोधरा' में कवि पूरी तरह सफल हुआ है।

यशोधरा का भाव-पक्ष—राहुल-जननी तथा विरहिणी यशोधरा की भावनाओं के वर्णन ने 'यशोधरा' को मार्मिक बना दिया है। विरह और पुत्र-वत्सलता के स्पष्टीकरण में कवि ने बड़ी सहानुभूति से काम लिया है, यशोधरा के दोनों रूप बड़ी सजगता से चित्रित किए गए हैं।

किसी भी भाव के वर्णन में हमें यह देखना चाहिए कि उसे कवि अपनी

भावनाओं के साथ मिलाकर प्रगट कर पाया है या नहीं। जैसे, 'यशोधरा' में पति और पुत्र विषयक प्रेम का वर्णन किया गया है, तो कवि इस पति-पुत्र विषयक रति के वर्णन में स्मरण, पश्चात्ताय, अमर्ष, भय आदि भावनाओं को रति के साथ जगा पाता है या नही। जो कवि स्थायी भाव के साथ अधिक से अधिक संचारियों को जागृत करता चलता है, वही रससिद्ध कवि कहलाता है। उसके वर्णन में अनेक भाव लहरियाँ थिरकती रहती हैं जो पाठक को मुग्ध कर लेती हैं। 'यशोधरा' ऐसी भाव-हिलोरों का अथाह सागर है। यशोधरा जब कहती है—

"सखि वे मुझ से कहकर जाते
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ वाधा ही पाते।"

—तो पति के प्रति उसकी अपार आसक्ति के साथ साथ पति की उपेक्षा से उत्पन्न ग्लानि, गर्व, आवेग, वितर्क, आशंका, पश्चात्ताप, दीनता, स्मृति आदि संचारियों से पति विषयक रति की अनुभूति गहन से गहनतम हो जाती है। वह आगे कहती है—

'मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहिचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना
जो वे मन में लाते।'

पति ने सतत् अनुगामिनी पत्नी के प्रति अविश्वास करके मानों सारी नारी जाति को अविश्वस्त ठहरा दिया है। गोपा को यही तो पश्चात्ताप है, यही तो आत्मग्लानि है। किन्तु, गोपा स्वामी को दोष कैसे दें, यह तो उसकी प्रीति में बाधक हो जाता, अतः वह तत्क्षण कहती है—

'नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते
पर इनसे जो आँसू बहते
सदय हृदय वे कैसे सहते
गए तरस ही खाते।'

यह समाधान पति के प्रति आसक्ति को और दृढ़ कर देता है, कम नहीं। यह बात नहीं कि उसमें गर्व न हो, बल्कि वह तो कहती है—

'स्वयं सुसज्जित करके रण में
प्रियतम के प्राणों के पण में
हमीं भेज देतीं हैं रण में—
क्षात्र धर्म के नाते ।'

जहाँ यशोधरा के गर्व कह दीप्ति दर्शनीय है, वहाँ उसका दैन्य भी देखिए—

'हुआ न यह भी भाग्य अभागा
किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था, त्यागा
रहें स्मरण ही आते ।'

भावनाओं का यह द्वन्द्व देखते ही बनता है । चित्त में पश्चात्ताप, आत्मग्लानि, शोक और फिर गर्व उत्पन्न होता है और फिर तुरन्त दीनता । कैसी सुन्दर भाव लहरियां उठरही हैं । बेचारी यशोधरा के गर्व का मूल्य ही क्या रहा ? इस गर्व का सहेजने वाला तो उसका प्रियतम ही था, पर वह तो उपेक्षा करके चला गया । परन्तु फिर भी मानसिक दशा स्थिर रहे तब न ? अपना कर छोड़ने वाले के प्रति एक शिकायत तो होती ही है और समर्पण भी होता है । मुँह फेर कर बैठ जाने का अर्थ यह तो नहीं होता कि हृदय भी मुख मोड़ ले, प्रेम की यह दशा कितनी विचित्र है । शिकायत भी है और स्मरण की इच्छा भी, और क्षण भर बाद तो आशा का अंकुर भी उत्पन्न होता है—

'गए, लौट भी वे आवेंगे
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे ।'

कवि भली प्रकार जानता है कि विभिन्न भावनाओ के परिवर्तन से प्रेम अधिक पुष्ठ होता है । अतः वह यशोधरा के मन में फिर शंका उत्पन्न कर देता है—'वह पुनर्मिलन कैसा होगा ?' अब वह स्वयं अनुमान करने लगती है—'आँसुओ से प्रिय का अभिषेक होगा, यह यौवन समाप्त हो जायगा, अतः मिलन के आनन्द में भी यह कसक रहेगी । परन्तु प्रिय यह सब बिना सोचे ही चले गए ।

'रोते प्राण उन्हें पावेगे
पर क्या गाते गाते ?'

भावों का यह तरंगाघात 'यशोधरा' में देखते ही बनता है। एक दूसरे को ढकेलती हुई भावनाएँ सारी चेतना में मंथन उत्पन्न कर देती है। अनेक भावनाओं की एक साथ ही मूर्ति में अभिव्यक्ति भारतीय कला की विशेषता रही है। गुप्तजी इस कला में प्रवीण हैं, तभी तो यशोधरा में आत्म सन्तोष, जननीत्व की गरिमा और हर्ष की ललक एक साथ साकार हो उठी है। सिंदूर और चूड़ी को सर्वस्व मानने वाली भारतीय पत्नी के पास यदि ये दोनो वस्तुएँ हैं और गोद में राहुल सा लाल भी है, फिर भारतीय माँ बनने के लिए और चाहिए ही क्या ?

'मेरी मलिन गूदड़ी में है राहुल सा लाल
बस सिंदूर बिंदु से मेरा जगा रहे यह भाल।'

यशोधरा के गीतों में छायावादियों जैसी अन्तर्मुखी भावना भी व्यक्त हुई है। छायावादी कवि विरह की नाना वृत्तियो को जगाकर उसका विस्तार करता है, अपनी भावना से सारा जगत ओत प्रोत कर देता है, जगत की प्रत्येक वस्तु उसकी भावनाओं में डूबी हुई दिखाई पड़ती है। सारा विश्व भावाभिभूत हो जाता है। यशोधरा को जिस मृत्यु का आगमन दिखाई पड़ता है वह सारे जगत में छाया हुआ है—

'फूलो पर पद रख, कूलों पर रच लहरो के रास
मंद पवन के स्पन्दन पर चढ़ बढ़ आया सविलास

भाग्य ने अवसर पायारी
मरण सुन्दर बन आयारी'

जिस कला से चित्त का जितना ही अधिक विस्तार होता है, वह कला उतनी ही अधिक श्रेष्ठ होती है। इसी भाव-विस्तार को सार्थक बनती हुई मानो यशोधरा कह रही है—

'मैंने हा क्या सहा सभी ने मेरी बाधा व्यथा सही।'

प्रकृति के सारे व्यापार, ऋतुएँ आकाश, पाताल, धरती सभी उसकी व्यथाओं से पीड़ित हैं। उसकीं ताप से ही ग्रीष्म बनता है, उसी के आँसुओ से वर्षा आती है और दूसरी ओर पति की शान्ति-कान्ति से शरद को प्रकाश मिलता है। इस

प्रकार 'यशोधरा' में सारी प्रकृति भावना मय हो रही है, मानव-हृदय और जगत अभेद हो गए हैं। भेद की सीमा टूट गई है, तब कुछ अपना हो गया है, सहानुभूति का छोर दिगंत तक पहुँच गया है।

भाव-वर्णन में तीव्रता लाने के लिए कवि ने तुलनात्मक पद्धति को भी अपनाया है। प्रकृति भी अन्य वस्तुओं से तुलना करते हुए पात्र की मानसिक दशा और तीव्र हो उठती है। अँधेरी रात, नक्षत्र, आकाश विरहिणी के लिए रहस्यमय प्रतीत होने लगते हैं। यशोधरा नक्षत्र भरे आकाश से अपने सूने हृदय की तुलना करने लगती है, तभी उसे प्रिय की याद हो आती है जो रत्नहार डालकर उसे रिझाया करता था, पर अन्त में वह निष्ठुर निकला। इस प्रकार विरोधी परिस्थितियों में अपने को रखकर जब यशोधरा सोचती है तो उसके पलक नहीं उठते। वह भविष्य की आशंका से व्याकुल होकर चुपचाप अंधकार को देखती रहती है। इस प्रकार यशोधरा के भाव-चित्रण में कवि ने अनेक पद्धतियों को अपनाकर अपनी प्रतिभा को दर्शाया है।

विरह-वर्णन के अतिरिक्त यशोधरा के वात्सल्य का भी विशेष महत्व है। हिंदी में 'यशोधरा' ही पहली कृति है जिसमें वात्सल्य के द्वारा विरह का परिपाक किया गया है। अनेक स्थलों पर कवि ने वात्सल्य और विरह का एक साथ वर्णन किया है और उसमें भी वात्सल्य उद्दीपन रूप में प्रयुक्त हुआ है, यह कवि की नवीन कला है। पुत्र को देखकर पति का स्मरण और पति के विरह में पुत्र को देखकर सब कुछ सहने का तथा दुःख को मन में रखकर चुपचाप जलते रहने का प्रयत्न-कवि का सराहनीय प्रयास है। माता का रुलाकर पिता ने 'अजाना पथ' ग्रहण किया है अतएव पिता के विरुद्ध राहुल के ये शब्द देखिये—

अम्ब पिता आएँगे तो उनसे न बोलूँगा
और संग उनके न खेलूँगा, न डोलूँगा

क्योंकि— गए वे अम्ब क्यों कुछ बिना कहे ?
हम सबने ये दुःख जिससे यहाँ सहे।

यह सुनकर गोपा पर क्या बीतती होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है। आशा और निराशा के झूले में उसका हृदय झूलता रहता है। निराशा तो इसलिए

कि वह जानती थी कि प्रियतम से पुनर्मिलन नही हो सकेगा । किन्तु, गोद में राहुल, प्रिय की ज्ञान-प्राप्ति और लोक कल्याण की भावना से उसे कुछ आशा हो रही है। इसलिए अपने उत्तरदायित्व को निरन्तर सम्हाले रहती है । वह सोचती है कि पति यदि एक बार दर्शन भी दे जायें तो उसका वह पश्चात्ताप तो मिट जाय कि उससे विना कहे वन चले गए । परन्तु, यशोधरा के प्रेम में वासना का लेश मात्र भी नहीं है, इसलिए वह प्रियतम के प्रति एकान्त समर्पण करके कह उठती है—

—चाहे तुम सम्बन्ध न मानो
स्वामी ! किन्ते न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो ।
पहले हो तुम यशोधरा के पीछे होगे किसी परा के'

× × ×

ऐसा सोचते ही उसका जननीत्व उभर आता है और वह कहने लगती है—

'वधू सदा मैं अपने वर की
पर क्या पूर्ति वासना भर की
सावधान ? हाँ निजकुल घर की
जननी मुझको जानो ।'

'इस प्रकार यशोधरा का दृष्टिकोण वदलने लगता है और वह पति के पुत्र की माँ वनने में अधिक गौरव का अनुभव करने लगती है । अतः नदी के द्वारा यहीं सन्देश भेजती है कि—"धाय तुम्हारे सुत की गोपा बैठी है वस ध्यान ले ।"

अव यशोधरा में न रूप का गर्व रहा है न आत्म ग्लानि, वरन् जव वह माता की गरिमा से अभिभूत है । विरहिणी यशोधरा को जननी का रूप प्रदान करके कवि ने उसे दिव्य वना दिया है । भावनाओं के क्रमिक विकास से कला निखर उठी है । अव यशोधरा पश्चाताप, शोक, आत्म ग्लानि और क्षोभ को भूलकर शान्त हो जाती है—

'कृतकृत्य हुई गोपा पाया यह योग, भोग जा तू ।'

जननी यशोधरा की वात्सल्य-भावनाओं का भी पूर्ण परिपाक हुआ है । पहले तो वह पुत्र पर झुँझलाती हुई दिखाई पड़ती है—

चुप रह चुप रह हाय अभागे
रोता है अव किसके आगे ?

यहाँ यशोधरा अभी अपने पत्नीत्व को भूल नहीं सकी है, दूसरी ओर उसे मातृत्व का निर्वाह करना पड़ता है, किन्तु अभी मातृत्व ने पत्नीत्व पर अधिकार नहीं कर पाया है । तभी मानो वह सर पटक कर कहने लगती है—

"अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।"

किन्तु पुत्र के मुख को देखकर धीरे धीरे यह वेदना कम होने लगती है, इस लिए वह बेटे से आग्रह करती है—

'किलक अरे मैं नेक निहारूँ
इन दांतों पर मोती वारूँ'

पुत्र को देखकर यशोधरा भविष्य के सुख की कल्पना करती है, इसलिए कष्ट भी उसे आनन्दमय प्रतीत होता है—

"गोपा गलती है पर उसका राहुल तो पलता है ।
अश्रुसिक्त आशा का अंकुर देखूँ कब फलता है ।।"

वात्सल्य रस में शिशु के भोले वचन बड़े आनन्ददायी होते है । शिशु के प्रश्नों की झड़ी से माता पिता कभी खींझते नहीं, वरन् आनन्द उठाते हैं, यहाँ राहुल भी प्रश्नों की झड़ी लगा देता है—

'अम्ब मेरी बाव कैसे तुझ तक जाती है ?'

तो यशोधरा उसके प्रश्न का आनन्द लूटते हुए उत्तर देती है—

'बेटा वायु पर बैठ उड़ आती है ।'

शिशु को सुलाने के लिए माँ लोरी गाती है—

'सो अपने चंचलपन सो'

गीत के द्वारा ही वह उसे जगाने का प्रयत्न करती है—

'जाग दुःखिनी के सुख जाग'

दोनों ही गीत अनूठे है और भावों की गम्भीरता से ओत प्रोत हैं । धीरे-धीरे राहुल वड़ा होता है, साथ ही साथ उसके कार्य कलाप और प्रश्नों में भी परिवर्त्तन हो जाता है, अब उसके कार्य और प्रश्न बुद्धिमानी के होने लगे हैं । परन्तु फिर भी कवि ने स्वाभाविकता को नहीं मिटने दिया है ।

अब नंद और शुद्धोदन की मानसिक स्थितियों पर भी थोड़ा सा दृष्टिपात कीजिए। कवि ने यशोधरा के अतिरिक्त नंद, महाप्रजापती और शुद्धोदन के मनः मंथन का भी बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया है। भरत की भाँति नंद के मन में यही पश्चात्ताप है कि गौतम मेरे लिए राज्य छोड़कर चले गए किन्तु उसे यह अत्याचार लगता है—

'आर्य यह मुझ पर अत्याचार
राज्य तुम्हारा प्राप्य मुझे ही था तप का अधिकार।'

किन्तु भाई की थाती पर वह अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार है—

'नंद तुम्हारी थाती पर ही देगा सब कुछ वार'

कैसा अनुपम त्याग है! महा प्रजावती की ममता मयी वेदना को कवि ने एक ही गीत में उडेल दिया है, अपने भोले सुकुमार पुत्र के लिए उसका चिन्तन देखिए—

'कहाँ न जाने वह भटकेगा
किस झाड़ी में जा अटकेगा
हाय! उसे काँटा खटकेगा'

कवि ने कौशल्या और यशोदा दोनों के ही स्वरूप महाप्रजावती में समाहित कर दिए हैं। जिस प्रकार राम लक्ष्मण के लिए कौशल्या सोचती थी कि न जाने दोनों कहाँ किसी वृक्ष के नीचे भीगते सिकुड़ते होंगे', उसी प्रकार यहाँ महाप्रजावती भी सोचती है। यशोदा ने अपने को देवकी का धाय बताया था, यहाँ महाप्रजावती के सामने भी उसकी जीजी महामाया की धरोहर का सवाल है अब वह उनको क्या उत्तर देगी!

"जीजी से क्या हाय! कहूँगी
जीते जी यह ज्वाला।"

इस दृष्टि से वह यशोदा से भी आगे है क्योंकि यशोदा तो कृष्ण का लालन पालन कर चुकी थी, यहाँ धरोहर को सम्हाल भी न सकी। इस प्रकार महा-प्रजावती त्याग और सौम्यता की प्रति मूर्ति है।

शुद्धोदन का तो सारा स्वप्न सी मिट गया। उन्होंने वे सारे प्रयत्न कर डाले जिससे कि किसी प्रकार गौतम का राज्य, वीरत्व और विलास के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो। किन्तु क्रूर भाग्य ने पाँसा ही पलट दिया, सुख की सारी कल्पना मौन दुःख में बदल गई। इस आत्मसंताप से वृद्ध पिता चीख मार कर इतना ही कह सका—

'चला गया रे चला गया'

और उसके साथ ही प्रकृति भी मानों इन्हीं शब्दों को दुहरा रही हो। यशोधरा के विलाप, शिशु राहुल के अनाथपन, नंद और महाप्रजावती शोक ने उस वृद्ध-हृदय के रहे सहे धैर्य को भी समाप्त कर दिया। उस समय उनपर क्या बीती होगी, इसकी कल्पना एक भावुक ही कर सकता है। गुप्त जी ने शुद्धोदन की पीड़ा को सबसे अधिक समझा है, उनके पितृत्व को कवि ने अपार सहानुभूति से देखा है—

'मैं हूँ पिता, चिन्ता मुझे पुत्र के प्रगति की
भूला वह भोला उठा रक्खूँ क्या उपाय मैं'

गौतम बुद्ध भगवान हो गए पर शुद्धोदन के लिए तो एक सरल भोले भाले शिशु के रूप में ही रहे। पिता का हृदय ऐसा ही होता है। यशोधरा उचित ही कहती है—

'उनसे भी भोला तुम्हें देखती हूँ हाय मैं'

अतएव हम कह सकते हैं कि 'यशोधरा' हृदय-पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त सफल कृति है। श्री व्यथित हृदय ने सत्य ही कहा है—

"गुप्त जी के काव्य पर उनके सरल जीवन की छाप है। जिस प्रकार उनका जीवन सरल और आडम्बर व कृत्रिमता से रहित है उसी प्रकार उनकी रचना भी कलात्मकता से दूर है। उन्हें कलात्मकता से पृथक रहकर भी स्वाभाविकता के साथ विकास किया है। उनकी रचना का आधार सत्य है। वे सत्य का ही अंचल पकड़ कर आगे बढ़े है। उनकी गति में भावना और अनुभूतियों की प्रधानता है।"

कला-पक्ष—कला-पक्ष में कवि की कल्पना शक्ति, भाषा, शैली आदि पर

विचार किया जाता है। अतएव इन दृष्टियों से हम 'यशोधरा' का परीक्षण करके देखेंगे कि वह कलापक्ष में कहाँ तक सफल कृति बन सकी है।

कल्पना का प्रयोग—कवि कल्पना का प्रयोग अनेक प्रकार से करता है। घटना का रूप निश्चित करने, पात्रों में नया व्यक्तित्व भरने, नवीन उक्तियों के बनाने तथा प्रकृति की वस्तुओं को ग्रहण करने में कवि को कल्पना शक्ति से काम लेना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि भाव-चित्रण के लिए कल्पना का सहारा लेना ही पड़ता हैं। स्वतन्त्र तथा नवीन रूपों की सृष्टि तथा प्रकृति-वर्णन के लिए भी कल्पना प्रयोग आवश्यक होता है। गुप्त जी ने 'यशोधरा' में प्रायः कल्पना प्रयोग किया है। स्वरूप की दृष्टि से कल्पना का एक प्रयोग देखिए। 'जमे हुए दूध' के रूप को प्रस्तुत कर कवि राहुल के दाँतों का सौंदर्य प्रगट करता है—

"पानी भर आया है फूलों के मुँह में आज सवेरे
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल मुख में तेरे
किलक अरे मैं नेक निहारूँ

प्रकृति की वस्तुओं को ग्रहण करके राहुल के शयन को स्पष्ट किया गया है—

"पुष्कर सोता है निज सर में
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में
गुंजन सोया कहीं भ्रमर में
सो मेरे ग्रह गुंजन सो।"

इसी प्रकार बालों की कालिमा को कवि अंधकार से प्रगट करता है क्योंकि दोनों में रूप साम्य है—

"घुसा तिमिर अलको में भाग
जाग, दुःखिनी के सुख जाग"

प्रकृति-वर्णन में भी कल्पना का एक स्वरूप दिखाई पड़ता है। 'यशोधरा' में अनेक स्थलों पर प्रकृति उपमेय के रूप में प्रयुक्त हुई है और यशोधरा उपमान के रूप में। अतः सामान्य रूप वर्णन न होकर यशोधरा की संवेदना से वे प्रकृति चित्र और भी अधिक सुन्दर हो गए हैं। जैसे—

"सौधा शिखर पर स्वर्ण वर्ण की आतप आभा भा रही,
ज्यों तेरे अंचल की छाया मेरे सिर पर छा रही।"

इसी प्रकार अनुभूति और सुगंध का साम्य देखिए—

'शीतल मन्द-पवन वन वन से, सुरभि निरन्तर ला रही
ज्यों अनुभूति अदृश्यतात की मुझ में तूझ में धा रही ।'

स्वतन्त्र रूप से प्रकृति-वर्णन करने का अवकाश कवि के पास नहीं था, अतः उसके एक दो चित्रों के अतिरिक्त अधिक वर्णन नहीं मिलते । उदाहरणार्थ—

'उलट पड़ा वह दिन-रत्नाकर
पानी नीचे ढलक रहा
तारक-रत्नहार सखि उसके
खुले हृदय पर झलक रहा ।'

यहाँ आकाश से समुह की सुन्दर कल्पना की गई है । दाड़िम को लेकर भी कवि ने नवीन कल्पना की है । वह इसलिए फट गया है क्योंकि उसमें सहन-शक्ति न थी, वह दुख सह नहीं सका । फट जाने से अब मानो वह प्रसन्न है, क्योंकि दुःख का भार हलका हो गया है । दाड़िम के दानों से हँसी के समय निकले हुए दाँतों की कल्पना सुन्दर प्रयोग है—

"दरक कर दिखा गया निज सार जो
हँस दाड़िम तू खिल खेल
प्रकट कर समान प्यार जो,
रो कठिन हृदय सब झेल ।"

इस समय सर्वत्र कल्पना के द्वारा प्रकृति को यशोधरा की मानसिक स्थिति के अनुकूल दिखाया गया है । इसके अतिरिक्त कवि ने प्राचीन परम्परा के अनुसार षड्ऋतु का भी वर्णन किया है ।

'मैं ने ही क्या सहा सभी ने मेरी बाधा व्यथा सहीं—इस गीत में गुप्त जी ने सारी ऋतुओं के साथ अपनी प्रचुर कल्पना शक्ति द्वारा यशोधरा का तादात्म्य दिखाया है । लगता है कि यशोधरा के दुख से दुखी होकर ही प्रकृति अनेक रूप बदलने को विवश हो गई है । प्रकृति का यह संवेदन शील रूप 'यशोधरा' की निधि है । उसमें और मानव-हृदय में कोई भेद नहीं रहा है । इस प्रकार कवि की कल्पना शक्ति का चमत्कार 'यशोधरा' दर्शनीय है, परन्तु यह कल्पना भाव-विधायक के रूप में ही अधिक प्रयुक्त हुई है, रूप-विधायक रूप में नहीं ।

अलंकार-विधान—अलंकारों के लिए भी कल्पना का प्रयोग होता है। 'यशोधरा' में मुख्यत: उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा मानवीकरण आदि सादृश्य मूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। परन्तु, श्लेष वक्रोक्ति आदि शब्दालंकारों और विरोधा भास के रूप में विरोध मूलक अलंकारो का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है।

उपमा अलंकार के उदाहरण देखिए—

'नमन तेरे मीन से हैं'
'पद्मिनी सी सधुर मृदुव्'
'सती शिवासी तपस्विनी माँ'

रूपकाति शयोक्ति की छटा यहाँ विद्यमान है—

'वह नव नीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र'

नवनीत 'सारवस्तु' और तक्र 'तुच्छ वस्तु' के उपमान हैं।

रूपक और उत्प्रेक्षा का मिश्रित सौंदर्य इन पंक्तियों में प्रगट हुआ है—

"उलट पड़ा यह दिव-रत्नाकर, पानी नीचे ढलक बहा।
तारक रत्नहार सखि, उसके खुले हृदय पर झलक रहा॥"

श्लेष का भी एक उदाहरण लीजिए—

"मुक्ता फल निर्द्वन्द्व चुनेगा'

इसमें मुक्ता के मुक्ति और मोती दोनों ही अर्थ हैं।

विरोधाभास का सबसे सुन्दर प्रयोग इस गीत में हुआ है—

"रुदन का हँसना ही तो गान
गा गाकर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान"

कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा अलंकारों का अत्यन्त स्वाभाविक रूप में यशोधरा में प्रयोग किया है।

छन्द्—यशोधरा में भाव और भाषा के अनुकूल अनेक प्रकार के मात्रिक और वर्णिक छंदों का प्रयोग किया गया है। कुछ तुकान्त और अतुकान्त छंद भी प्रयुक्त है। अनेक प्राचीन छंदों का अभिनवीकरण भी गुप्त जी ने 'यशोधरा' में किया है। किन्तु यशोधरा में गीतों का ही बाहुल्य है। वैसे 'यशोधरा' के समान

छंद तथा शैली की विभिन्नता के दर्शन हमें गुप्तजी की किसी अन्य कृति में नहीं होते। विस्तार के भय से इस सम्बन्ध में अधिक कहना उचित नहीं है।

शैली—शैली की दृष्टि से 'यशोधरा' में प्राचीन और नवीन, दोनों ही तत्वों का सामञ्जस्य है। उसके अधिकांश गीतो में छायावादी प्रवृति झलकती है। जैसे—

(१) 'मरण सुन्दर बन आया री।'
(२) 'कूक उठी है कोयल काली'
(३) 'रुदन का हँसना ही तो गान' इत्यादि

किन्तु छायावादी प्रवृत्ति पूरी तरह से 'रुदन का हँसना ही तो गान' में ही मिलती है। इस गीत में कवि अन्तर्मुखी हो उठा है और इतिवृत्तात्मकता को पीछे छोड़ देता है। अतएव अधिकांशत: 'यशोधरा' में प्राचीन शैली का ही अधिक प्रयोग हुआ है, फिर भी नई शैली की ओर कवि का ध्यान बराबर रहा है और यथा शक्ति उसे भी अपनाने का प्रयत्न किया है। वस्तुत: गुप्त जी की वर्णना शक्ति जितनी प्रवल है, व्यंजना शक्ति उतनी नही। इसलिए 'महाभिनिष्क्रमण' में कवि की शैली में प्रखर वेग उत्पन्न हो गया है क्योंकि उसमें वर्णन की प्रधानता है। उदाहरण स्वरूप—

"रख अब अपना यह स्वप्न-जाल
निष्फल मेरे ऊपर न डाल
मैं जाग रूक हूँ ले संभाल"

इसमें प्रवाहमयता और वेग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

गुप्त जी की शैली की दूसरी विशेषता उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग है। विरोधाभास और लक्षणा शक्ति के द्वारा उन्होंने अनेक स्थलों पर अनोखा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

'बाधा तो यही है, मुझे बाधा नही कोई भी'

इसमें विरोधा भास के द्वारा सुन्दर उक्ति वैचित्र्य आ गया है। इसी प्रकार श्लेष मूलक वक्रोक्ति का सौंदर्य इन पंक्तियों में देखिए—

"मैं भी थी सखि अपने मानस की राज हंसिनी रानी।
सपने की सी बातें प्रिय के तप ने सुखा दिया पानी॥"

इस प्रकार का उक्ति वैचित्र्य 'यशोधरा' के संवादों में भरा पड़ा है।

भाषा—'यशोधरा' की भाषा द्विवेदी युग की प्रतिनिधि भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है, उसमें तत्सम शब्दों की अधिकता है। व्यवहार की दृष्टि से तो यह भाषा सुन्दर है पर कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है। शब्दों के लालित्य और ललक पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है, केवल अर्थ का स्पष्ट करना ही कवि का उद्देश्य रहा है। इसमें व्यंजना भी पुराने ढंग की है और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए श्लेष-मूलक शैली का अनुसरण किया गया है। सूक्ष्म, संकेतात्मक, संगीतमय और प्रतीकात्मक शैली का इसमें अभाव है, तभी यशोधरा में पुरानापन अधिक मिलता है। अनगढ़ शब्दावली का भी अधिक प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं व्यर्थ की तुकबन्दी भी मिलती है। अनेक स्थानों पर ऐसे अपरिष्कृत शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनके कारण गीतों का सौंदर्य नष्ट हो गया है। जैसे—

"बाहर से क्या जोड़ूँ जोड़ूँ
मैं अपना ही पल्ला फाड़ूँ
तब है जब वे दाँत उखाड़ूँ"

इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग के कारण गीत भद्दे और रूखे हो गए हैं। बातचीत के शब्दों को गुप्तजी ने गीतों में भी टाँक दिया है, इसी से उनके गीत अच्छे नहीं लगते। ध्वनि के अनुसार कोमल पदावली का प्रयोग गुप्तजी से नहीं हो सका। वे द्विवेदी जी की भाँति प्रौढ़, तत्सम, कसी हुई पदावली का प्रयोग करने में समर्थ हैं, ध्वनि, वर्ण और रूप-साम्य उनकी भाषा में नहीं मिल पाता। तक्र, वक्र, नक्र, परा, चरा, तरा, मनचीता, तीता, टीमटाम, खुजलाऊँ, देताजा ओ लाला, राम-दुहाई, आदि शब्द सर्वथा कवित्व हीन हैं, कवि ने इनका प्रयोग करके भाषा की सरसता का बहुत कुछ ह्रास किया है। संस्कृत की समस्त-प्रधान पदावली से भी गुप्त जी को मोह रहा है, अतः उन्होंने इसका भी प्रयोग किया है। परन्तु, गीतों में कोमलता, गेयता और प्रवाह वृद्धि के लिए सरस, मीठे और तद्भव शब्दों का ही अधिक प्रयोग होता है। गुप्त जी ऐसे शब्दों का चयन बहुत कम कर सके हैं। फिर भी डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के शब्दों में हम कह सकते है कि—

'खड़ी-बोली का जैसा परिमार्जित, सरल, ललित, प्रवाह-युक्त और सुव्यवस्थित रूप गुप्त जी की कविता में मिलता है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है। वे सरल से

सरल भाषा में सूक्ष्म भावों को प्रगट करने में सिद्ध हस्त हैं। इनकी भाषा में में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों से निराली ही छटा आ गई है। उसमें माधुर्य ओज और प्रसाद तीनों ही गुण पाए जाते हैं। उसमें संस्कृत की कोमल पदावली के भी दर्शन होते हैं।"

इस प्रकार 'यशोधरा' के भाव-पक्ष और कला-पक्ष का संक्षेप में विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक दृष्टि से वह एक सफल काव्य है।

परीक्षा की दृष्टि से प्रमुख अंशों की टिप्पणी सहित व्याख्या

(१) देखी मैंने आज जरा ... .मैंने नतरा' (पृष्ठ १३)

प्रस्तुत पद्य-खण्ड में सिद्धार्थ के मन में उत्पन्न हुई उस विरक्ति-भावना को व्यक्त किया गया है, जो एक वृद्ध पुरुष को देखने पर उनके हृदय में उत्पन्न हुई थी। वे बुढ़ापे से शिथिल उस मनुष्य को देखकर चिन्तातुर हो उठते है और कहने लगते हैं—

आज मैंने वृद्धावस्था का साक्षात् दर्शन कर लिया है। यह तो मनुष्य की बड़ी दयनीय अवस्था है, इसमें तो मनुष्य का स्वरूप ही विकृत हो जाता है। क्या मेरी यशोधरा भी वृद्ध होने पर इसी प्रकार की हो जाएगी और उसका कंचन सा स्वरूप धूल में मिल जाएगा ? उसका हराभरा उद्यान स्वरूपी यौवन (जो मेरे भ्रमर-मन का मधुर आकर्षण है) क्या वृद्धावस्था रूपी पतझर के आने पर सूख कर झड़ जाएगा ? कैसी विचित्र बात है कि इसने अगणित रोगों से घेर कर मनुष्य को उस पशु की भाँति विवश कर रखा है, जो खूँटे में दँवा तड़पा करता है। किन्तु नहीं, मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है, उसमें चेतना की प्रधानता है, अतएव मनुष्य होकर मुझे धिक्कार है जो मेरे रहते हुए मेरी चेतना स्वरूपी यशोधरा के सौन्दर्योपवन कों कोई चट करजाय ! : म में वह शक्ति है जिससे हम इन रोगों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह सम्पूर्ण जगत जो अपने वाह्य रूप में परिपूर्ण और आकर्षण दिखाई सड़ता है, क्या भीतर से खोंखला है ? यदि यही बात है, तब तो वास्तव में सारा संसार सूना और अपूर्ण है। ऐसे अपूर्ण, शून्य और निस्सार संसार को भी मैं पार न कर सका तो फिर कुछ नहीं किया, मेरा जीवन निष्फल ही रहा।

अर्थात् यदि इस संसार के कष्टों से मुक्त होने का मार्ग भी मैं न खोज सका तो मेरा जीवन व्यर्थ है ।

विशेष—(१) इत पंक्तियों में कवि ने सिद्धार्थ के द्वारा दुखमय संसार की अभिव्यक्ति की है । विवशता, ग्लानि और प्रतिज्ञा के भावों को अत्यन्त स्वाभाविकता से प्रस्तुत कर गुप्त जी ने इस पद को अत्यन्त सरस बना दिया है। अन्तिम पंक्ति के सिद्धार्थ तुलसी के राम की भान्ति मानों भुजा उठाकर संसार के दुःख-निशाचरों का दमन करने के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह भाव-चित्र पाठक के मन में स्फूर्ति और रोमांच पैदा कर देता है ।

(२) 'वर्ण-सुवर्ण' में रूपक, 'पशु ज्यों बाँध परा' में उपमा, 'उपवन' और 'चेतन' में रूप का तिश योक्ति अलंकार है ।

(३) 'सूनाभव' से यह ध्वनि निकलती है कि इस जगत को तो पार करना बड़ा सरल है, क्योंकि वह सूना है समुद्र की भान्ति भरापूरा नहीं ।

(२) 'मरने को जग   गौतमी गीता है' (पृष्ठ १३–१४)

प्रस्तुत गीत में श्री मैथिली शरण गुप्त सिद्धार्थ के द्वारा जीवन की नश्वरता को उसी प्रकार प्रगट कर रहे हैं जिस प्रकार कबीर ने कहा था—

'पानी केरा बुद बुदा अस मानुस की जात ।
देखत ही मिट जायगा ज्यों तारा परभात ॥"

अन्तिम पंक्तियों में सिद्धार्थ इसी कारण इस तत्वहीन जगत् की उपेक्षा करके वास्तविकतत्व कों खोजने का संकल्प करते हैं और साथ ही सम्पूर्ण जगत की भयभीत चेतना के उद्धार का आश्वासन भी देते हैं ।

सिद्धार्थ कह रहे हैं कि अरे ! जगत मृत्यु की आकांक्षा में ही जीवित रहता है अर्थात यहाँ जो भी जीवन धारण करेगा, उसकी मृत्यु भी अवश्यम्भावी है । यह सम्पूर्ण संसार उस भरे हुए घट के समान है जो तले में फूटा होने कारण भरा होने पर भी रिसते रहने से खाली ही रहता है । इसलिए इस संसार रूपी छिद्रयुक्त घट से जीवन की अन्तिम बूँद अनजान में किसी भी समय, और किसी भी स्थान पर निकल जाती है, और पता भी नहीं लग पाता । सारा जगत विषय-भोगों में डूबा हुआ क्या वास्तव में रस-पान करता है । रस का परिणाम मृत्यु तो नहीं होता

वह तो जीवनदान करता है, मृत्यु तो विष-पान से ही सम्भव होती है। अतएव वास्तविकता यह है कि विषय-भोग रस नहीं, विष ही है, जिन्हें पीते-पीते मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। पाता नहीं, ऐसे समय में मेरी प्रिय चेतना कहाँ चली जाती है जिसके बिना यह संसार व्यर्थ असार और कटु बन जाता है। अच्छा, अब मैं उसी परम तत्व की खोज करूँगा। अस्तु, मेरे प्रिय संसार के प्राणियों! अब तुम भयभीत क्यों हो, अब तो तुम्हारा उद्धार करने के लिए मैं आ पहुँचा हूँ। अतएव अपना भय छोड़कर तुम्हे मेरी इस घोषणा पर विश्वास करना चाहिए कि 'गौतम की प्रतिज्ञा यही है कि अपना कल्याण चाहने से पूर्व मानव मात्र का कल्याण किया जाय'।

विशेष—(१) बुद्ध-धर्म में महायान सम्प्रदाय के अनुसार सारे विश्व का उद्धार करना ही अपनी मुक्ति है गुप्त जी ने अन्तिम पंक्तियों में इसी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है।

(२) मरने को·······जीता है—इसमें विरोधाभास अलंकार है।

रिसता है जो·······रीता है—में दृष्टांत अलंकार है।

(३) 'वह कर्मकण्ड ताण्डव ···जा साम दाम' (पृष्ठ २०)

प्रस्तुत पंक्तियों में सिद्धार्थ के मुख से कवि वैदिक कर्मकाण्ड से उत्पन्न हुए आडम्बर और धर्म की झूठी दुहाई के प्रति उपेक्षा-भाव प्रगट कर रहा है, साथ ही संसार में व्याप्त कूटनीतियों का अन्त करके सहानुभूति तथा मैत्री पूर्ण व्यवहार के द्वारा जगत के प्राणियों का हृदय जीतने का अमर बुद्ध-सन्देश दे रहा है। यहाँ सिद्धार्थ कहरहे हैं कि—

हे विश्व! ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की आडम्वरमय पूजा करते रहो और उनके द्वारा सम्पादित कर्मकाण्ड की दुहाई देते रहो। परन्तु मुझे तो भली भाँति ज्ञात हो गया है कि आज यहाँ जिस कर्मकाण्ड का ताण्डवनृत्य क्षण प्रतिक्षण तीव्र होता जा रहा है, उसकी वेदी पर विनाशकारी हिंसा ही अपने हाव-भाव दिखलाती हुई मुस्करा मुस्करा कर थिरक रही है और उन सारे यज्ञ-यागादि के पीछे याज्ञिक–महन्तों की लुब्ध जिह्वा को तृप्त करने की चंचल उत्कण्ठा छिपी हुई है, कि यज्ञो में चढ़ाया हुआ मांस का टुकड़ा कब उनके गले के नीचे

उतरे। अतएव हिंसा और विनाश के पोषक इस कर्मकाण्ड को तुम्हीं स्वीकार करो, जिसमें धर्म के नाम पर निरीह पशुओं की निर्मम हत्या की जाती है, और उनका रुधिर पान करने के लिए पाखड़ियों की जीभ चटपटाती है। अतएव हे क्षणिक संसार! मैं तुम्हें और तुम्हारे कर्मकाण्ड को दूर से ही नमस्कार करता हूँ।

मेरी तो अब एक ही कामना है कि जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण विश्व को समान दृष्टि से देखता है उसी प्रकार मुझे भी विश्व-मैत्री की दृष्टि का लाभ प्राप्त हो तथा अपने प्रेम भरे हृदय द्वारा संसार के हृदयों को जीतकर प्रेम-विजय रूपी अमृत-वर्षा कर सकूँ। इस प्रकार सर्वत्र अपने हृदय का साम्राज्य प्राप्त कर एक ऐसी महान् विकासोन्मुखी सर्जना करूँ कि साम, दाम, दण्ड, भेद जैसी कूटनीतियाँ जिसके पास भी न फटकने पाएँ।

विशेष—(१) कवि ने हास-रास, लोल-लास आदि शब्दों के द्वारा ताण्डव नृत्य को मूर्त रूप सा दे दिया है। शब्दों में ताण्डव की सी ध्वन्यात्मकता है। इस दृष्टि से इन पंक्तियों में कला निखर उठी है। साथ ही कर्मकाण्ड के आडम्बरों का संश्लिष्ट रूप में विश्लेषण करके चार ही पंक्तियो में कवि ने बुद्ध के प्रेम और मानवतावादी सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया है, अभिव्यक्ति की यह क्षमता भी यहाँ दर्शनीय है।

(२) लोलुप ·····का लोल लास—में वृत्यानुप्रास की सुन्दर छटा है।

मित्र शब्द में बड़ी सुन्दरता से श्लेष का प्रयोग हुआ है।

ला हृदय-विजय-रस·······सृष्टि लाभ-में रूपक हैं।

(४) 'प्रियतम! तुम···············खींच न लाये' (पृष्ठ २६)

यह मधुर गीत विरह व्यथिता यशोधरा अपने प्रियतम सिद्धार्थ के स्मरण में गुन गुना रही है। वियोग में मिलन की सारी परिस्थितियाँ वियोगिनी को एक एक कर याद आती है और उन्हें सोच सोंच कर उसकी वेदना और भी अधिक तीव्र हो जाती है। किन्तु, यशोधरा अभी निराश नहीं हुई, उसे विश्वास है कि एक दिन उसके स्वामी अवश्य मिल जाएँगे। व्यथा से आक्रान्त उसके मुख से निकली हुई आहें-कराहें और निःश्वास प्रियतम के पास पहुँचकर उन्हें विचलित कर

देंगे, और वे करुणा से द्रवित होकर मुझे दर्शन देने अवश्य आ जाएँगे। यशोधरा की इसी वेदना और विश्वास को कवि ने यहाँ प्रगट किया है। वह कहती है कि—

हे प्रियतम ! तुमने कानों के मार्ग से मेरे हृदय-कक्ष में प्रवेश किया था; अर्थात् तुम्हारी बड़ाई को सुनकर मैंने मिलन-सुख का सा प्रथम अनुभव किया था अतएव अपने हृदय में पत्थर रखकर मैंने तुम्हें अपना आराध्य बनाया। फिर मैंने अपने अधर बन्द कर लिए अर्थात् अन्य किसी का नाम न लेकर मौन हो गई। मुझे यह भय था कि कहीं तुम मेरे हृदय मन्दिर से निकल न जाओ, इसलिए मैंने अपने अधर रूपी द्वार सदा के लिए बन्द कर लिए। किन्तु, मेरे आनन्द और विलास के केन्द्र स्वरूपी प्रियतम ! मेरा दुर्बल भाग्य तुम्हें फिर भी न रोक सका, आज तुम आँखों की राह से निकल ही भागे, अर्थात् आज तुम मेरी आँखों से ओझल हो गए—ठीक उसी प्रकार, जैसे मेरे प्रिय अश्रु आँखों से निकल निकल कर ओझल हो रहे हैं। मैं अब तुम्हें कह ही क्या सकती हूँ ! आप जहाँ भी चाहें आनन्दपूर्वक रहें। परन्तु, यदि मेरी वेदना में शक्ति है, निःश्वासों में क्षमता है, तो तुम एक न एक दिन अवश्य खींचे चले आओगे। वस्तुतः मेरी कराहें और दीर्घ श्वासें व्यर्थ सिद्ध होंगी यदि वे तुम्हें आकर्षित करके मुझे न मिला सके।

विशेष—(१) प्रस्तुत गीत पर छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव है। हास, विलास, निश्वास आदि अमूर्त भावों को प्रतीकात्मकता से मूर्त रूप प्रदान किया गया है। वियोग की स्मरण दशा की अभिव्यक्ति यहाँ हुई है।

(२) सम्पूर्ण गीत में सांगरूपक अलंकार है। हृदय घर है, अधर द्वार है किन्तु आँख कान आदि छोटे-छोटे मार्ग भी इसमें विद्यमान हैं।

(५) 'जाओ मेरे सिर के बाल........................सब जंजाल' (पृष्ठ ३४)

यशोधरा को छंदक के द्वारा जब यह ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ अपने सुगन्धित केशों को काटकर पूर्ण सन्यासी हो गए हैं, तो उसे भी अपने सारे शृंगारिक उपकरण कष्टदायक प्रतीत होने लगे, क्योंकि अब उनका उपयोग ही क्या रहा। स्त्री के दीर्घ केश मणिमालायें, अंजन, अंगराग आदि उसके शृंगार-वृद्धि के मुख्य उपकरण होते हैं, किन्तु जिसका पति सन्यासी हो गया हो उसके लिए तो वे उप-

करण विडम्बना ही हैं। अतएव यशोधरा अपने केशों को सम्बोधित करती हुई कहती है—

मेरे सिर के केश! अव तुम मुझसे दूर हो जाओ, क्योंकि अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं रही। हे सखी! कैंची तो ले आओ मैंने व्यर्थ में ही काले साँपों की तरह इनको सिर पर पाल रखा है, अव में इनको काट डालना चाहती हूँ जिससे वे आपस में न उलझें और मेरे पति-देव भी सरलता पूर्वक अपने वृत्त का पालन कर सकें। ये लम्बी-लम्बी एड़ी को छूने वाली लटें, जो भयंकर सर्पिणी की भाँति लहरा रहीं हैं कहीं मुझे डस न लें—अधिक कष्ट न पहुँचावें, इसलिए इनका काट डालना ही उचित है।

मैं अब अपने अंगों पर स्वर्ण, हीरों और मणियों के हार इत्यादि आभूषणों को नहीं बाँधना चाहती, क्योंकि हाय, मेरे सौंदर्य की सराहना करने वाला तो चला गया, अब इस वोझ के लादने से लाभ ही क्या? मुझे तो अपना सुहाग चाहिए, शृंगार का कोई लोभ अब मुझे नहीं रहा। अतएव मेरी सुहाग-चिन्ह चार चूड़ियाँ ही मेरे हाथों में सदैव पड़ी रहें यही मेरी इच्छा है। इस दुःखपूर्ण जीवन में राहुल जैसा रत्न जव मेरे पास है तब मुझे और कुछ नहीं चाहिए। पुत्र जैसी विभूति जव मेरे पास है तव अंजन और सुन्दर लेप की मुझे क्या आवश्यकता? (दूसरी ओर जब मुझे तपस्विनी का वैभव प्राप्त है, तब अंजन और अंगराग आदि शृंगार के उपकरणों का मैं क्या करूँगी?) अब तो मेरी शोभा के लिए सुहाग-चिन्ह सिन्दूर की वेंदी ही पर्याप्त है, इसलिए उसी से अपना भाल सुशोभित रखूँगी। बस यही कामना है कि यह निरन्तर अंगारे के समान प्रज्वलित बना रहे, जिससे प्रियतम के मार्ग में पड़ने वाली सारी बाधायें जलकर भस्म हो जायँ।

विशेष—(१) संयोग में सुन्दर लगने वाली वस्तुएँ वियोग में कष्टकारी प्रतीत होती हैं, इसीलिए यशोधरा को अपनी विरहावस्था में सौन्दर्य का कोई प्रस्वाधन स्वीकार नहीं। किन्तु भारत की पतिव्रता नारी है अतः चार चूड़ियाँ और सिन्दूर की वेंदी के प्रति उसका शाश्वत मोह है। गुप्त जी ने इस प्रकार भारतीय पतिव्रता नारी का सुष्ठुचित्र प्रस्तुत किया है।

(२) 'कालेव्याल' में रूपकातिशयोक्ति, 'राहुल-सा लाल' में उपमा, 'विभूति' में श्लेष और अंगार में रूपक की छटा दर्शनीय है।

(६) 'मेरे रूप-रंग ....क्या विकृत-विहारी' (पृष्ठ २७)

वियोगिनी यशोधरा वियोग सहन करने के लिए अपने को सावधान करती हुई पति की उस बात को दुहरा रही है, जिसमें उन्होंने संसार और उसके सौन्दर्य को अस्थिर और नश्वर बतलाया था। तब तो उसकी समझ में यह बात नहीं आई थी, किन्तु आज वह पूर्ण प्रतीत हो रही है। अतएव वह अपने सौंदर्य को सम्बोधित करके कह रही है कि—

हे मेरे स्वरूप और वर्ण ! यदि तू अपने अभिमान में चूर हो, तो तू व्यर्थ में ही झूठे गोरव को धारण किए हुए हैं। क्या तुझे याद नहीं ? स्वामी ने कितने बार कहा था कि तू परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है नश्वर है। विकसित यौवन से युक्त तेरे सौंदर्य वृद्धावस्था में उसी प्रकार नाश हो जाता है, जिस प्रकार विकास को प्राप्त हुआ दिवस अन्त में संध्या के अन्धकार में परिणत हो जाता है। इसीलिए उन्होंने तुम्हारी परवाह नहीं की। मुझे उनके इस व्यवहार पर तो कोई शिकायत नहीं किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्होंने मेरे अन्तः सौन्दर्य (अन्तरात्मा) को भी विगड़ा हुआ और विकारों से युक्त मान लिया। क्या उनको ऐसा मान लेना उचित है ? यदि नहीं, तो आर्य पुत्र की परीक्षा के पश्चात् अब मेरी परीक्षा का समय आ गया है, शायद इसीलिए वे मुझे इस प्रकार छोड़ कर चले गए हैं।

विशेष—(१) यशोधरा अपने वाह्य सौंदर्य-जाल में प्रियतम को फँसाए रखना नहीं चाहती थी, अतएव वे यदि उसके वाह्य सौन्दर्य की उपेक्षा करते तो अनुचित न था। किन्तु हृदय तो चेतना की शाश्वत सत्ता है, उसकी उपेक्षा करना उनका सर्वथा अन्याय है। इस ग्लानि को कवि ने बड़ी सफलता और न्याय-बुद्धि के साथ व्यक्त किया है।

(२) 'फूलादिन—वहा है' में दृष्टान्त अलंकार और सुन्दर मुहावरा दर्शनीय है।

(७) 'मैं अवला !......अहो विरक्ति विहारी' (पृष्ठ ३८)

इन पंक्तियों में यशोधरा गौतम के रूप में समस्त जगत के सामने अपने

स्वाभिमान का डंका बजाती हुई प्रगट करती है कि पुरुषों ने हम नारियों को तो अवला कहा है किन्तु में पूछती हूँ कि वे पुरुष क्या सवल हैं जो हमसे विरक्त होकर पलायनवादी वन बैठे हैं। अतएव आज इतिहास वदल जाय, उसमें पुरुषों को निर्वल और हम जैसी दारुण विरह को सहने में समर्थ नारियों को सवल कहा जाय। यह स्वाभिमान ही इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है और दूसरी ओर विरह की टीस भी प्रगट हो रही है। ग्लानि, आश्चर्य और झुँझलाहट से युक्त यशोधरा कह रही है कि—

मैं अवला ही सही, पर वे मेरे स्वायी तो प्रसिद्ध पराक्रमी थे। मैं चलो यह भी मान लेती हूँ कि मैं सांसारिक विषय वासनाओं में आसक्त थी, पर वे तो विषय-वासनाओं के दास नहीं थे, तव क्या वे मेरा भी उद्धार नहीं कर सकते थे। अतएव सत्य तो यह जान पड़ता है पुरुष की अर्धांगिनी और संसार की प्रत्येक वस्तु के आधे भाग की अधिकारिणी नारी को तुम पुरुषों ने एक मात्र अपनी विषय तृप्ति का साधन समझ रखा है। (दूसरी ओर इसका अर्थ इस प्रकार से भी लगाया जा सकता है कि वह अपने नारीत्व को सम्वोधित करते हुए कहती है कि हे मेरे नारी-भाव ! क्या वे (स्वामी) तेरे विषय-मात्र ही थे, हाय, न जाने किसने नारी के अन्दर वासना रूपी इस अग्नि को प्रज्वलित करके उसके जीवन को इस भाँति संतप्त वना दिया है ?) किन्तु क्या मेरे भीतर जो नारी भावना है, उसमें वासना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ? हाय, मेरी गोद में ये वियोग के अंगारे किसने वरपा दिए, अर्थात् यह विपत्ति कैसे आ गई है ? किन्तु विरक्ति में विहार करने वाले स्वामी ! तुम जिस मुक्ति की खोज में मुझे छोड़ कर चले गए, उसमें भी तो नीरीत्व ही है (मुक्ति स्वयं स्त्री लिंग है। तव तो नारी की ही जीत हुई, क्योंकि मुझे छोंड़कर भी तुम मुक्तिरूपी नारी से पीछा न छुड़ा सके)

विशेष—(१) इन पंक्तियों में नारी के स्वाभिमान, व्यंग्य और उपालम्भ की सरस अभिव्यक्ति हुई है। दूसरी ओर यह सवति—संताप भी प्रगट है कि पति ने यशोधरा को छोड़कर अन्य स्त्री रूपी मुक्ति को अपना लिया है, सौत की इस भावना से यशोधरा की पीड़ा अभिमान में वदल जाती है।

(२) 'अवला'—में परिकराङ्कुर अलंकार है।

'अंगार'—में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(८) सिद्धि मार्ग ....'भार-भय भारी' (पृष्ठ ३८)

यहाँ यशोधरा सम्पूर्ण नारी जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए भारतीय नारी के महान आदर्श और ज्वलन्त स्वाभिमान को प्रगट करते हुए कह रही है कि—

यदि मुक्ति के मार्ग में नारी बाधा-स्वरूप है तो फिर उसके अस्तित्व का प्रयोजन ही क्या रहा ? किन्तु तुम तो नारी को अपने मार्ग का बाधक समझ कर ही मुझे छोड़ कर चले गए। जब तुमको मेरे प्रति पहले से ही विरक्ति है, फिर तुम से पूँछू ही क्या ! काश ! तुम यहाँ होते, तो इस समस्या का समाधान मैं तुमसे ही कराती। तब देखती कि तुम्हारा क्या उत्तर होता ? किन्तु यदि तुम इस प्रश्न पर बिना विचार किए चले गए तो मुझे भी यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि विश्व में नारियों की संख्या भी आधी है, उनका भी शुभ-अशुभ, कोई न कोई दृष्टिकोण होता ही है। अतः उनके विचारों का भी मूल्य होना चाहिए। तो मेरे विचार भी सुनो, नारी पुरुष के मुक्ति मार्ग में बाधक नहीं है, उसे अर्धांगिनी का गौरव प्राप्त है, इसलिए उसका भी संसार में अस्तित्व और महत्व है। उसे अबला और असहाय समझना कदापि उचित नहीं। सृष्टि विधायक ईश्वर जिस प्रकार पुरुष का संरक्षक है उसी प्रकार हम नारियों का भी। फिर हम जैसी सौभाग्यवती नारियों का सरंक्षक तो उसका पति भी है। इस दुहरे संरक्षण में भला नारी को अनाथ कहना अन्याय नहीं तो और क्या है ! खैर, तुम गए हो तो जाओ, किन्तु यदि मेरा पतिव्रत-धर्म सुदृढ़ है, तो फिर कोई यन्त्रणा या संकट हमें भयभीत नहीं कर सकता। अतएव इस अवस्था में भी मैं अपने नारीत्व की रक्षा करूँगी और इस वियोग को अपनी परीक्षा समझूँगी।

विशेष—नारी का स्वाभिमान और पातिवृत-धर्म के प्रति उसकी निष्ठा इन पंक्तियों में मुखर हो उठी है। एक ओर कवि यहाँ पुरुष वर्ग नारी का अस्तित्व पहिचानने के लिए सचेत कर रहा है तो दूसरी ओर नारी वर्ग की उसकी अमूल्य-निधि पातिव्रत की रक्षा का कठिन संदेश दे रहा है।

(९) 'जाओ नाथ अमृत ....यशोधरा कर धारी' (पृष्ठ ३८) (Very Imp.)

इन पंक्तियों में यशोधरा बड़े विश्वास के साथ घोषणा करती है कि—

हे नाथ ! तुम जाओ अपने अमृतमय ज्ञान की खोज करो। मेरा स्वाभिमान भी कम नहीं, मैं भी यहाँ अपने नारीत्व पर गर्व करती हूँ और तुम्हारी दासी होने में ही अपना गौरव समझती हूँ, मेरे लिए इतना ही बहुत है, रही मुक्ति की बात सो उसे तुम अपनी पटरानी बनाओ। हे प्रियतम ! तुम निरन्तर तपस्या में मग्न रह कर मेरी उपेक्षा करते रहो, परन्तु मैं यथाशक्ति तुम्हारे उपेक्षा-भाव और वियोग को सहन करूँगी। और तब, हे विश्व को करुणा और स्नेह प्रदान करने वाले ! मैं देखूँगी कि तुम्हारे गौरवगाथा में स्वाभिमान से युक्त मेरी करुण-कथा को कहीं स्थान मिलता है या नहीं ? अन्त में मैं विश्वास के साथ कहती हूँ कि मेरा हाथ तुम्हारे ऊपर है (अर्थात् मैं निरन्तर तुम्हारी निर्व्याधि के लिए कामना करती हूँ) अतएव कोई भी अप्सरा तुम्हारी तपश्चर्या में विघ्न नहीं उत्पन्न कर सकती।

विशेष—(१) यशोधरा का नारी-व्यक्तित्व यहाँ चरम सीमा पर पहुँच गय है। उसका व्यंग्य कितना तीखा है कि अप्सराओं के विघ्नों से बचाने में मैं ही तुम्हारी सहायक हो रही हूँ। किन्तु फिर भी पति के कल्याण और गोरव की शुभकामना करती है, भारतीय पत्नी का यही धर्म है।

(२) 'पानी' और 'तप' में श्लेष का सौंदर्य है।
'दानी' में सुन्दर व्यंग्योक्ति है।
'प्रिय तुम तपो सहूँ मैं भरसक' में असंगति अलंकार है।

(१०) सखि वसंत से······· ··········व्यथा सही' (पृष्ठ ४१) (Imp)

प्रस्तुत गीत में यशोधरा प्रकृति के साथ अपनी मनोदशा को मिलाकर दोनों को एक साथ अभिव्यक्त कर रही है वह अपनी सहेली से पूँछ बैठती है कि:—

हे सखि वसंत के समान यौवन सम्पन्न मेरे प्रियतम कहाँ चले गये ? मैं ग्रीष्म के समान अकेली यहाँ रह गई हूँ, अर्थात् प्रियतम ने यौवन में ही वन को प्रस्थान कर दिया और मैं उनके वियोग की अग्नि में झुलसी काया लेकर यहीं पड़ी हूँ। यहाँ जो इस समय ग्रीष्म ऋतु व्याप्त हो रही है वह मानों मेरे वियोग से जलने के कारण ही इस दशा को पहुँच गई है अतएव, देखो, प्रियतम के वियोग से उत्पन्न दुःख को केवल मैंने ही सहन नहीं किया वरन् सम्पूर्ण जगत ही मेरे प्रति सहानुभूति रखकर उसे सहन कर रहा है।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि एक ओर ऋतु वर्णन की प्राचीन परम्परा का अनुसरण कर रहा है और दूसरी ओर उस पर छायावादी शैली का प्रभाव भी व्यक्त हो रहा है। प्रकृति के प्रति इतना गहन तादात्म्य-भाव छायावाद की ही विशेषता है। यशोधरा को अपने वियोग में सम्पूर्ण प्रकृति दुखी और व्यथित दिखाई पड़ती है।

(२) ऊपर की दोनों पंक्तियों में उपमा अलंकार है और सारी पंक्तियों में हेतुत्प्रेक्षा का सौंदर्य हैं।

(११ 'तप मेरे मोहन का..................हा ? जठर मही' (पृष्ठ ४२)

इन पंक्तियों में यशोधरा ग्रीष्म ऋतु की विशेषताओं को अपनी व्यथा का ही कारण बतलाती हुई कह रही है कि—

हे सखि ऐसा लगता है कि ग्रीष्म रूपी उद्धव मेरे मोहन रूपी सिद्धार्थ का संदेश देने तथा मुझे भस्म रमाने का उपदेश देने के लिये आ रहा है। दूर से उड़ कर आती हुई धूल इसी का प्रमाण दे रही है, किन्तु हाय मैं इस विभूति को भी तो नहीं अपना सकती क्यों कि मेरे ऊपर राहुल के पालन पोषण का भार है अतः मैं तपस्वनी वनने में भी असमर्थ हूँ। इस समय रोते रोते मेरा कंठ सूख रहा है, वियोग की तपन से पसीना छूट रहा है, मृग तृष्णा की भाँति मैं प्रवंचना में फस गई हूँ, मेरी दृष्टि भी धुधली पड़ गई है, चारों ओर निराशा की अंधियारी ही दिखलाई पड़ रही है। अतएव स्वामी की शाँतिदायिनी छाया भी अदृष्य हो गई है। ठीक यही दशा प्रकृति कीं भी हो रही है, जान पड़ता है कि मेरे विरह ताप और प्रियतम के तपःतेज के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी ही जल रही है। अरे मैं अकेली ही नहीं सम्पूर्ण चराचर आज मेरी पीड़ा में भाग ले रहा है।

विशेष (१)—पहले उपयुक्त पंक्तियों के विशेष को देखिये—यहाँ गुप्त जी ने ग्रीष्म ऋतु का स्वरूप यशोधरा की विरहदग्धा दशा से मिलाकर अंकित किया है।

(२) 'विभूति' में श्लेप अलंकार प्रथम दो पंक्तियों में रूपक और 'भूलसी दृष्टि' में विशेषण विपर्यय अलंकार है।

(१२) 'जागी किसकी वाष्पराशि..........................व्यथा सही' (पृष्ठ ४२)

वर्षा का प्रारम्भ होने पर विरहिणी यशोधरा की भाव धारा प्रकृति के सामन्ज-

स्य में खो जाती है वह सोचने लगती है कि—

विरह से दग्ध हुये जिस प्रकार मेरे हृदय में अवरुद्ध अश्रु समूह अतीत की सुखद स्मृति याद आने पर पूर्ण वेग से नेत्रों में छा जाता है और फिर अविरल धाराओं के रूप में उमड़ घुमड़ कर बरसने लगता है, उसी प्रकार शून्य में खोये हुये बादल जब वाष्प के रूप में एकत्रित होकर आकाश में छा गये हैं और अनेक धाराओं के साथ में बरस रहे हैं। तो क्या मेरे कारण प्रकृति की भी ये दशा हो गई है। आगे वह अपनी सखी से कह रही है कि जिस प्रकार हृदय में दबी हुई स्मृति अनुकूल समय पर जाग्रत हो जाती है उसी प्रकार हवा के द्वारा बिखरे और धूल मिट्टी में दबे हुये बीज वर्षा होने पर अंकुरित हो रहे हैं। वर्षा को देखकर मुझे तो अपने प्रियतम की दृष्टि स्मरण हो आई जो करुणा और दया की भावना से सदैव द्रवित रहती थी। जिस प्रकार इन बादलों से युक्त आकाश में बिजली कौंध उठती है उसी प्रकार मेरे स्वामी के हृदयाकाश में साँसारिक प्राणियों की पीड़ा कसक उठती थी। दूसरी ओर यशोधरा को ऐसा लगता है कि विरह से व्याकुल होकर जिस प्रकार उसका हृदय व्यथित होकर सैकड़ों अश्रु धाराओं में फूट पड़ता है उसी प्रकार वर्षा ऋतु भी अपनी अविरल धाराओं से प्रवाहित हो रही है।

विशेष (१)—'किसकी' शब्द के द्वारा कवि ने इन पंक्तियों में रहस्यवाद की स्थापना की है, मानव और प्रकृति का सुन्दर सामन्जस्य तो है ही।

(२) सम्पूर्ण पंक्तियों में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार अनुभूत हैं।

(१.३) उनका यह कुंज कुटीर.................. समीर वहाँ (पृष्ठ ४४)

यशोधरा को पति के संयोग में लताओं के कुंज के बीच बना हुआ कुटीर अत्यन्त सुन्दर लगता था किन्तु आज स्वामी के वियोग में वह कुटीर और उसका सम्पूर्ण वातावरण यशोधरा के हृदय को कचोट रहा है क्योंकि उसे वहां पहुँचते ही प्रियतम के साथ किये हुये मधुर खिलवाड़ों की स्मृति हों आती है। ये मधुर स्मृतियाँ वियोग की पीड़ा को और अधिक बढ़ा देती हैं। अतएव वह अपनी सखी से कह रही है कि—

हे सखि ! लता कुंजों के बीच बना हुआ मेरे स्वामी का यह वही कुटीर है जिसके छिद्रो से प्रवेश करके प्रातःकालीन सूर्य की अरुणाभ किरणें अबीर सा

बिखेरती थी यहाँ इस समय भी भ्रमर कोयल और मयूर आदि सुन्दर पक्षी विद्य-मान हैं और पपीहे का 'पिव कहाँ' भी सुनाई पड़ रहा है। इस प्रकार उस समय की भाँति आज भी कुटीर की वही साज सज्जा है किन्तु इतना सब होने पर भी स्वामी की अनुपस्थिति के कारण सब अनाथ जैसे हो रहे हैं! हे सखि! देखो सुगंध रूपी मदिरा का पान करके मस्त हुआ यह पवन कैसा इधर उधर भटक रहा है। कितना अच्छा हो कि मेरी स्मृति के साथ यह प्रियतम के पास पहुँच जाय और मेरे संदेशे को वहाँ पहुँचा दे!

विशेष (१)—स्वामी के अभाव की अनुभूति और सामीप्य आने की अभिलाषा इन पंक्तियों में अत्यन्त सुन्दरता से व्यंजित हुई है।

(२) पूरे पद्यांश में स्मरण अलंकार है साथ ही समीर में मानवीकरण भी है!

(१४) 'निशि की अंधेरी यवनि के...................जो रही' (पृष्ट ६३)

यशोधरा को आज अपने प्रियतम के वियोग में भविष्य अंधकारमय दिखाई पड़ रहा है अतीत तो उसके हाथों से निकल ही चुका है। इस समय उसकी चेतना क्षितिज के उस पार अनन्त सत्ता से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुये वर्तमान- को अपने अधिकार में रखने का प्रयत्न कर रही है। संसार और अपने जीवन के सुख दुख की विवेचना में व्यस्त वह नियति के नाटक को नाटक के रूप में देख रही है। अंधेरी रात को सम्बोधित करते हुये वह कह रही है कि—

हे रजनी के श्यामल परदे जब सारी चेतना सो जाती है तब न जाने तेरे पीछे क्या क्या खेल होते हैं अर्थात अंधेरी रात (जब कि सभी प्राणी निद्रा में खोये हुये हैं) रंग मंच की यवनिका के समान है। जिस प्रकार नाटक का पर्दा गिर जाने पर परदे के सामने तो शाँति छा जाती है किन्तु नेपथ्य में अगले दृश्य की तैयारी होती रहती है, उसी प्रकार अंधकार रात्रि का पर्दा है जिसके पीछें न जाने कोन सी तैयारी होती रहती है। ग्रह नक्षत्र भाग्य को प्रभावित करते हैं और जो कुछ होना होता है उसके बीज पहले ही वो दिये जाते हैं। यशोधरा रात्रि में नक्षत्रों को देखकर सोच रही है कि इन नक्षत्रों के समान ही मेरे भाग्य के बीज भी बोये जा रहे हैं इनका कुछ न कुछ फल अवश्य होगा किन्तु मैं फल के विचार से व्यर्थ ही क्यों चिंतित हो रही हूँ। संसार के लोग सुख-दुःख दोनों ही परिस्थितियों में रोता ही रहता है। उसे किसी भी स्थिति से संतोष नहीं हो पाता! सम्पूर्ण

विश्व के लोग इसीलिये दुख सुख दोनों में अपनी स्मरण और विवेक शक्ति बैठकर ही खो बैठते हैं, इसलिये उन्हें अपना कर्त्तव्य पथ दिखलाई नहीं पड़ता। पर मैं जाग रही हूँ, सावधान हूँ, संसार की ये दुर्बलता मेरी समझ में आ रही है किन्तु रोने के अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकती हूँ फिर भी अश्रु जल से अपनी दृष्टि को धोकर स्वच्छ कर रही हूँ ताकि अपने कर्त्तव्य पथ को पहचान सकूँ। मेरे खेल के दिन तो चले गये अर्थात् बचपन में सखियों के साथ खेलने का समय और यौवन में प्रियतम के साथ साथ खेलने का समय तो बीत गया उसकी चिंता करने से लाभ ही क्या ? किन्तु अब जो समय मेरे हाथ में है उसको तो न जाने दूँ अर्थात् भावी सुख दुःख की चिंता न कर इस समय मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना है।

विशेष (१)—इन पंक्तियों में रात्रि का नाटक को रंग मंच से सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया गया है !

(२) इसमें विगति पर पश्चाताप और अनागत की चिंता को छोड़कर कर्त्तव्य की श्रेष्ठता स्थापित की गई है।

(३) प्रथम दो पंक्तियों में रहस्यवादी अभिव्यक्ति हुई है !

(१५) 'उलट पड़ा वह····················पलक ह हा' (पृष्ठ ६३)

इन पंक्तियों में गुप्त जी ने आकाश के साथ समुद्र का सांगरूपक बाँधा है और उसके साथ यशोधरा की मनोदशा को भी चित्रित किया गया है। यशोधरा रात्रि के समय अकाश व नक्षत्रों को देखकर विचार करती है कि—

ऐसा प्रतीत होता है कि यह आकाश रूपी समुद्र उलटा हो गया है, अतएव उसका समस्त जल पृथ्वी पर ओस कणों के रूप में बिखर गया है। समुद्र में रत्न होते हैं जल के अभाव में वे रत्न चमकने लगते हैं। इसी आधार पर यशोधरा कल्पना करती है कि हे सखि ! ओस के रूप में जल के निकट जाने से इसके स्वच्छ हृदय पर तारों के रूप में रत्न राशि ही दमक रही है। इस आकाश रूपी समुद्रको देखकर यशोधरा अपने मन में प्रश्न करती है कि यह आकाश मेरे प्रतिष्ठान है या निष्ठुर ? इस पर आकाश ने मानों हँस कर यह उत्तर दिया कि हे यशोधरा ! मैं न निर्दय हूँ न सदय। मुझमें स्थित नक्षत्रों की गति देख, यदि वे तेरे अनुकूल हैं तो मैं भी तेरे लिए दयावान हूँ और यदि नक्षत्रों की गति तेरे विपरीत तो मुझे भी तेरे

लिए कठोर बनना पड़ेगा क्योंकि मेरी दशा उस ज्योतिषी के सदृश हैं जो न किसी का पक्षपात करता है न विरोध, वरन् ग्रह-नक्षत्रों के द्वारा उसे जो भला बुरा ज्ञात होता है, उसे वह प्रश्न कर्त्ता को निश्पक्ष भाव से बतला देता है। इस उत्तर से गोपा का हृदय इतना सहम गया कि इच्छा रहते हुए भी उसकी पलकें ऊपर की ओर न उठ सकीं। इसमें व्यंग्योक्ति यह है कि यशोधरा को अपना दुर्भाग्य तो पहले से ही ज्ञात था नहीं तो उसका पति उसे छोड़ कर सन्यास ग्रहण करके वन को क्यों चल देता। नक्षत्रों के देखने पर उसे यह तो पता लगेगा ही, साथ ही यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी अन्य अमंगल का उद्घाटन हो जाय अतएव इसी भय के कारण उसकी आँखें ऊपर की ओर न उठ सकीं।

विशेष—प्रस्तुत पद्य खण्ड की कल्पना पर छायावादी प्रभाव स्पष्ट है। सम्पूर्ण पद में साँगरूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार की छटा विद्यमान है। 'पानी' रूपकातिशयोक्ति और 'ग्रह-चक्र' में श्लेष है।

(१६) 'सदन का हँसना.....................जलती मुसकान' (प्रष्ठ ६८)

(most Imp.)

राहुल अपनी वियोगिनी माँ से गीत गाने केलिए हठ करता है, तो यशोधरा उसकी प्रसन्नता के लिए गाने कों किसी प्रकार तैयार होजाती है, किन्तु उसकी हृदय की वेदना ही संगीत के रूप में प्रस्फुटित होती है। उसकी आहें और निश्वास संगीत के आरोंह अवरोह बनगये हैं। एक शब्द में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यशोधरा की करुण दशा स्वयं ही मर्मस्पर्शी करुण संगीत बन गई है। यशोधरा के इस सुन्दरतम गीत में इन्ही भावों को साकार बनाया गया है। वह अपने प्राणों की सम्पूर्ण शक्ति को बटोर कर गाती हुई व्यक्त करती है कि—

वेदना की पराकाष्टा ही संगीत को जन्म देती है। जब हृदय वेदना से भर जाता है तो उसका उच्छलन होंना अनिवार्य है, क्योंकि इस अवस्था में हृदय बीणा के तारों की भाँति भावनाओं से भरा रहता है, परन्तु इस अवस्था पर पहुँच कर अपने को प्रगट होने की उमंग उसे स्वतः झनझनाने के लिए विवश करदेती है और यह अपने आप उत्पन्न हुई झनझनाहट मधुर संगीन बनजाती है। ठीक भी तो है, हृदय की वेदना ही गीत के रूप में प्रगट होती है। जिस हृदय में दुःख नहीं, टीस नहीं जो किसी चोट से घायल नहीं, वह हृदय संगीत कों जन्म नहीं दे सकता। अतः

यशोधरा का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि हृदय में जब पीड़ा विद्यमान रहती है, उसी समय जब पुरुष में मुस्कराने की उमंग उठती है तभी गीत का सृजन होता है। तात्पर्य यह है कि उल्लास और आवेग के नीचे वेदना का होना अनिवार्य है। कलाकार भी सच्ची कला उसे ही मानता है जिसमें हृदय का क्षोभ प्रगट हुआ हो वेदना से बढ़कर हृदय का क्षोभ और क्या होसकता है? अतएव वेदना में जब उफान आता है तब वही उफान गीत की सृष्टि करता है। यशोधरा स्वयं कहती कि मेरी हृदय रूपी तन्त्री से निकले हुए स्वर मेरी वेदना को ही प्रगट करते हैं। यह तन्त्री कभी रो-रोकर गाती है तो कभी गा-गाकर रोती है। वस्तुतः पीड़ा के बहुत बढ़ जाने पर व्यथा भी मधुर बनजाती है, निराशा की पराकाष्ठा आशा के समान ही मधुर बन जाती है। किसी ने ठीक ही कहा है —

'दर्द का हद से गुजरना है दवा होजाना'

यशोधरा आगे कहती है कि मेरे हृदय की कसक गाते समय संगीत के आरोह अवरोह के रूप में प्रगट होती है और आहें-कराहें संगीत के ताल, लय बनजाते हैं। अब वह अपने संगीत के माधुर्य का कारण बतलाते हुए कहती है कि जिस प्रकार पपीहे की पुकार और कोयल की काकली के माधुर्य का कारण प्रेम-यज्ञ में आहुत हुआ उसका दग्ध हृदय है, उसी प्रकार मेरे संगीत की मधुरता का कारण भी विरह वेदना से दग्ध मेरा हृदय है। रोता हुआ हृदय जब किसी को पुकारता है तब उस में मधुरिमा होती ही है यशोधरा अपने संगीत में आर्त पुकार ही तो कर रही है।

वृक्ष रूपी पति से बिछुड़ी हुई लता रूपी यशोधा कह रही है कि मेरे पुष्प रूपी घावों का स्पर्श मत करो, अर्थात मेरी वेदना को न जगाओ। लता के फूल उसके आन्तरिक दुःख के फफोले ही तो होते हैं, कठोरता से स्पर्श करने पर फफोले फूट जाते हैं तब और अधिक वेदना होती है अतएव उन पुष्पों को सावधानी से भगवान पर उसी प्रकार चढ़ादो जिस प्रकार में अपने संगीत के सहारे अपने हृदय के फफोलों कों प्रभु के चरणों में समर्पित कर रही हूँ। जिस प्रकार पुष्पों का प्राण सुगन्धि है और प्रभु पर न्योछावर होकर वे अपना प्राण दे देते है, उसी प्रकार में प्रियतम को अपना जीवन-संगीत अर्पण कर रही हूँ।

इसी भाव को प्रगट करने के लिए वह दूसरा उदाहरण देती है। उस ओर

आकाश में छाई हुई बदली जब पुत्र उत्पन्न होने की पीड़ा का अनुभव करती हूँ तो वह मुस्कराने लगती है। बदली की यह मुस्कान विद्युत का स्वरूप है अर्थात वह प्रसव-पीड़ा से संतप्त वदली की मुस्कराहट ही है जो उसकी हृदय की वेदना से उत्पन्न हुई है, इसी से विद्युत में अनोंखी ज्योति होती है। अतः संसार में जो कुछ मधुर और ज्योति सम्पन्न है, उस सब की उत्पत्ति पीड़ा से ही हुई है।

विशेषः (१) यह 'यशोधरा' का सर्वश्रेष्ठ गीत है। एक ओर इसमें जहाँ वेदना की तरंगें उछल-वूड़ रही है हूँ वहाँ दूसरी ओर इस सत्य की स्थापना भी होरही है कि दुःख और वेदना से ही लोक-कल्याण की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे वृक्ष के विरह से दग्धलता की मुस्कान उन फूलो को जन्म देती है जो प्रभु के श्रृंगार वनते हैं, प्रसव की यातना सहकर बदली विद्युत को उत्पन्न करती है जों अँधेरी रात में प्रकाश देती है।

(२) अभिनव भाव, अभिनव कल्पना और अभिनव अभिव्यक्ति इस गीत के मुख्य लावण्य हैं। छाया वादी शैली का यह श्रेष्ठतम गीत कहा जा सकता है।

(३) 'रुदन का हँसना', 'गा गा कर रोना', 'राम मूर्छित आह्वान,' 'जलती मुस्कान' अदि में विरोधाभास तथा लाक्षारिणक शैली का चमत्कार उद्भासित हो रहा है।

(४) 'मूर्छित का आह्वान' 'जलती मुस्कान' में विशेषण वियर्ययकी छटा दर्श-नीय है तथा 'छेड़ो न वे लता के छाले' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(१७) 'यदि हममें अपना नियम·······उसे मैं भाऊँ' (पृष्ठ १०७) V. Imp.

वियोगिनी यशोंधरा को अब वन्धन प्रिय लगने लगे हैं। सिद्धार्थ ने संसार को नश्वर और दुःख मूलक माना था अतएव इससे भागकर उन्होंने बन की शरण ली। परन्तु यशोधरा इस मत का खण्डन करती है। उसकी दृष्टि से संसार में काँटे भी हैं और पुष्प भी। यदि हम सतर्कता से रहें तो जगत के कण्टक स्वरूपी रोग और व्याधियाँ हमारा कुछ नहीं विगाड़ सकतीं। अतः वह कहती है कि—

यदि हम अपने नियम-संयम का सुचारु रूप से पालन करते रहें तथा मन और इन्द्रियों दृढ़ नियन्त्रण रखें तो वड़े से वड़ा व्याधियों का समूह भी हमारे स्वास्थ्य और सौंदर्य में किसी प्रकार का विकार पैदा नहीं कर सकता। संयमानुसार जीवन व्यतीत करते हुए जब वृद्धावस्था आ जाती है तो उसे विश्राम के रूप में स्वीकार

करना चाहिए अर्थात् उस अवस्था में व्यक्ति को सभी झंझटों से मुक्त होकर आराम करना चाहिए। इसी प्रकार मृत्यु भी यदि ठीक समय पर आकर हमारे जर्जर और शिथिल शरीर के स्थान पर हमें नव जीवन दान देने आती है, तब क्या वह निष्ठुर है, कठोर है ? अर्थात् नहीं, वह तो हमारी हितैषिणी बनकर ही आती है। अतएव मेरी तो यही कामना है कि संसार मुझको अच्छा लगता रहे और मैं संसार को भली लगती रहूँ। फिर हे मुक्ति ! तू ही बतला कि मैं तुझे पाने का प्रयत्न किस लिए करूँ, मुझे तुझसे लाभ ही क्या है ?

विशेष—इन पंक्तियों में कवि का वैष्णवता वादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। वैष्णव भक्त मोक्ष की अपेक्षा भगवतलीला में लीन रहना अधिक पसंद करते हैं बुद्ध दर्शन का कवि ने बड़ी शिष्टता से यहाँ खण्डन कराया है।

(१८) 'ताओ प्रिछ भव में भाव·········प्रेम गीत मैं गाऊँ' (पृष्ठ १०६)

प्रस्तुत गीत में कवि यशोधरा के द्वारा निवृत्ति मार्ग का खण्डन कराकर प्रवृत्तिमार्ग की स्थापना करा रहा है। यशोधरा आनन्द एवं प्रेम मय जीवन व्यतीत करने के लिए सिद्धार्थ को आमन्त्रण दे रही है कि—

हे प्रियतम ! तुम लौट आओ। हम तुम दोनों मिलकर विश्व को कल्याणमय, नूतन भाव-विभूतियों से परिपूर्ण करदें। मुझे विश्वास है कि हम संसार रूपी समुद्र को पार कर पाएँ या न कर पाएँ अर्थात् संसार के आवागमन से मुक्त भले ही न हो सकें, परन्तु इसमें डूबेंगे नहीं। जीवन की सार्थकता और आनन्द तो इसी में हैं, कि हम अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए निरन्तर क्रिया शील बनें रहें। फिर मुक्ति की इच्छा भी तो एक इच्छा ही है, इसलिए इच्छाओं का पूर्णतः नाश नहीं किया जा सकता (तुम व्यर्थ में ही यहाँ से चले गए) तुम आ जाओ तो हम दोनों धर्म का समुचित पालन करते हुए निष्कलंक जीवन बिताएँ और विश्व के कल्याण के लिए सैकड़ों बार सहर्ष मृत्यु को स्वीकार करें और सैकड़ों बार नवीन जन्म धारण करें। अतएव हे प्रियतम ! तुम शीघ् ही सकुशल यहाँ आ जाओ और फिर मैं तुम्हें जिस प्रेम गीत को सुनाऊँ, उसे आनन्द के साथ सुनो। संसार का कल्याण इसी में होगा, मुक्ति में क्या रखा है ?

विशेष—इसमें भी यशोधरा गौतम के कैवल्य प्राप्ति के प्रयत्न, इच्छा के नाश, मुक्ति की इच्छा आदि विचारों का खण्डन करती है।

(१९) 'ओ यतियो वृतियों के ·········साक्षी-रूप' (पृष्ठ ११३) V. V. Imp.

प्रस्तुत पद्यांश में यशोधरा अपनी वेदना और स्वाभिमान की गम्भीरता को प्रगट करने के लिए हिमालय को मानदण्ड के रूप में प्रस्तुत कर रही है। वह हिमालय को सम्बोधित करते हुए कहती है कि—

योगियों और तपस्वियों को विश्राम देने वाले तथा हम जैसी पतिवृता विरहिणियों की निःश्वास पूर्ण आहों और कराहों के ढेर के सदृश, निर्भय पर्वत राज हिमालय ! मुझे तेरी महानता में स्त्रीत्व की महानता की झलक दिखाई पड़ती है, क्योंकि तूने अपनी उच्चता के कारण ही विश्व में महान यश प्राप्त किया है। तो ध्यान रख कि तू जितना उच्च है, हम स्त्रियाँ भी अपनी वेदना और मर्यादा की गहराई के कारण उतनी ही महान हैं। निराशा के गहरे कूप में पड़े रहने पर भी हमारी मर्यादा तुम्हारे समान ही अडिग है। अतएव तेरे अतल में जल लहरा रहा है वह सदैव हमारे अश्रुओं की गहनता और स्वाभिमान की गम्भीरता प्रमाण रहेगा, मेरा यह दृढ़ विश्वास है।

विशेष—(१) यहाँ हिमालय की अनन्तता से कवि ने यशोधरा की वेदना और स्वाभिमान को मापने का सफल प्रयत्न किया है। हिमालय के अतल में अतुलित जल भरा है, तभी तो उसके हृदय से अगणित जल धाराएँ फूट पड़ीं हैं, जो शुष्क धरती को सींच कर हरा भरा बनाती हैं। उसी प्रकार यशोधरा के हृदय से निकले हुए अश्रु शुष्क हृदयों को सिंचित कर जगत को धन्य कर रहे हैं।

(२) छायावादी शैली के लाक्षणिक वैचित्र्य ने इस पद्यांश में अनोखा चमत्कार भर दिया है। आहों के उच्चस्तूप के रूप में हिमालय की कल्पना करके कवि ने मूर्त से अमूर्त का स्वरूप भी अंकित कर दिया है।

(३) 'तू जितना·······यह जीवन रूप' में विरोधाभास तथा 'पानी' में श्लेष अलंकार है।

(२०) 'सती शिवा सी··· ·······गिरा एक गुण गा रही ?' (पृष्ठ ११७) (Imp.)

इस गीत में कवि ने राहुल के शब्दों में यशोधरा की उपमा ऊषाकाल से दी है। ऊषा की लालिमा को देखकर उसके सादृश्य से राहुल के मन में जब यह भाव उत्पन्नहोता है कि मेरी माता यशोधरा भी तो इसी तरह की है तो दौड़कर

माँ के पास पहुँचता है और आत्मविभोर होकर अपने भावों को उसके सामने प्रगट करने लगता है कि—

हे तपस्विनी पार्वती के समान मेरी माँ ? देखो वह ऊषा आरही है जो बिलकुल तुम्हारे समान लग रही है। (अथवा हे माँ! तपस्विनी पार्वती के समान वह ऊषा आरही है जो तुमसे बिलकुल मिलती जुलती है)। क्योंकि जिस प्रकार मौन गम्भीर्य रहकर तुम अपने शून्य हृदय की थाह सी लिया करती हो उसी प्रकार यह सुनहली ऊषा आकाश रूपी अपने शून्य हृदय को लालिमा की गम्भीर्यरता से भर कर मानों उसकी थाह लगा रही है कि देखें मेरे हृदय में यह लालिमा कितनी गहरी है और कहाँ तक व्याप्त है ? यही नहीं, बल्कि जिस प्रकार तेरे सुनहले अंचल की प्रभा मेरे सिर पर पड़ रही है, उसी प्रकार भवनों की अटारियों पर सुनहली धूप की कान्ति फैल रही है। यदि एक ओर तुम्हारी आँखों में स्थित आँसू की बूँदें तुम्हारी पलकों को भिगोरही हैं और तुम इन आँसुओं के द्वारा ही अपने पवित्र प्रेम और वियोगानल रूपी आत्मतेज को प्रगट कर रही हो, तो दूसरी ओर सूर्य की किरणें ओस कणों से भीग रही हैं और उन कणों से मिलकर अपना तेज प्रगट कर रही है। जिस प्रकार हमारे और तेरे हृदय में दिखाई न देने वाले पिता की अनुभूति स्मृति के रूप में हो रही है, उसी प्रकार शीतल और मंद वायु अपने हृदय में अनेक वनों में विचरण करती हुई उनके फूलों से सुगन्धि को बटोर कर दौड़ती आ रही है। तेरी मूक दृष्टि जिस प्रकार पिता की मुख श्री की ओर लगी रहती है उसी प्रकार यह कमलिनी अपने प्रियतम सूर्य की ओर देखा करती है तथा जिस प्रकार उसके कोष में बैठा भ्रमर उसके यश को गुनगुना रहा है, उसी प्रकार तेरी गोद में बैठा हुआ में तेरे गुणों के गीत गा रहा हूँ। ठीक भी तो है, वाणी तो एक ही है चाहे उससे किसी पुरुष का गौरव गाया जाय चाहे किसी अन्य का।

विशेष —(१) प्रकृति और मानव का तादात्म्य इस गीत में बड़े कौशल के साथ व्यक्त हुआ है। छायावादी शैली का प्रभाव इस पर स्पष्ट है।

(२) उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण-ये सादृश्यमूलक अलंकार बड़ी

सुन्दरता से इसमें व्यक्त हुए हैं। सम्पूर्ण पर एक ओर यदि मालोपमा का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर सांगरूपक भी सुषमा भी मिश्रित होकर छा रही है।

(३) ऊषा का वर्णन नारी के रूप में किया गया है अतः इसमें मानवीकरण की व्यंजना भी हो रही है।

(२१) 'देकर क्या पाऊँगी..........वेला-सी विलाऊँगी ?' (पृष्ठ १२६)

यशोधरा को ज्ञात हो गया है कि प्रियतम कपिलवस्तु में पधारे हैं। उसे विश्वास है कि वे राजभवन में भी अवश्य आएँगे। अतः सतत-प्रतीक्षा के बाद जब उसके प्रियतम उसके यहाँ पधारेंगे तो उनके स्वागतार्थ कुछ न कुछ भेंट तो देनी ही चाहिए। परन्तु, दीना-हीना यशोधरा के पास तो अपने जर्जर शरीर के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं है जिसकी भेंट करके वह प्रियतम का स्वागत-सत्कार करे। यह सोच सोच कर वह गली जारही है। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि अपने को ही उनके चरणों में प्रस्तुत कर उनमें लीन हो जाऊँगी। अतः वह कहती है कि—

हे स्वामी ? तुम्हें कौन सी भेंट कर प्राप्त करूँ ? मेरे पास तो अब कुछ भी शेप नहीं रहा जिसको लेकर मैं आपके सामने उपस्थिति होती। फिर में कौन सी वस्तु लेकर आपके समक्ष आऊँ ! मेरी तो समझ में कुछ नहीं आता, इसलिए आप ही इस समस्या को हल कर दें।

हाँ, मेरे हृदय रुपी मानसरोवर में अवश्य रस है, पर उसमें वह मिठास नहीं रहा, तुम्हारे वियोग में वह खारे अश्रुओं के रूप में परिणत हो गया है। क्या करूँ, रीते तुम्हारे सम्मुख आने से तुम्हारा अपशकुन होगा, इसलिए भरी हुई गागरों के रूप में मैं अपने आँखों में प्रेमाश्रु भरकर तुम्हारे सामने सन्मुख होऊँगी। हे मेरे प्रियतम ! तुम यदि नवीन विकास (सृष्टि) के रूप में मेरे पास आओगे तो में भी नवीनता बनकर (नया रूप धारण कर) आपके नूतन सृष्टि-स्वरूप में समा जाऊँगी। और यदि तुम प्रलय के रुप में संसार को नष्ट करने आएँगे, तो मैं भी तत्क्षण प्रलय कालीन वेला (समय) की भाँति तुम्हारे हृदय में विलीन हो जाऊँगी, अर्थात् जन्म-मरण दोनों में मैं तुम्हारे ही साथ रहूँगी, तुमसे पृथक नहीं।

विशेष—(१) इन पंक्तियों प्रियतम के प्रति यशोधरा का अनन्य भाव सर्वथा नवीन ढँग से व्यक्त हुआ है, इसलिए गीत में सौन्दर्य वढ़ गया है।

(२) 'मानस' में रूपकातिशयोक्ति, 'बस में यही है बस' में यमक, 'धव, तुम........फव जाऊँगी' में उपमा, 'मेरे प्रतिपाल, तुम प्रलय-समान आए' में विरोधाभास अलंकार हैं।

(२२) आली पुरवाई तो आई..........रक्खो भाई !' (पृष्ठ १३१)

यशोधरा अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते-करते थक गई है। उनको सिद्ध प्राप्त कर लेने के समाचार से उसे शीघ्र मिलन की आशा हो गई थी, किन्तु जब उन्हें बुलाने के लिए गए हुए लोग वहीं अटक कर रह गए तो वह निराशा होने लगी। यशोधरा की इसी निराशा को कवि ने रूपक द्वारा स्पष्ट किया है। वह कहती है कि—

हे सखि ! मगध में प्रियतम के आगमन के समाचार के रूप में पुरवा हवा तो आकर सर्वत्र फैल रही है। किन्तु (उनके यहाँ न आने से) मेरे हृदयरूपी आकाश में अभी आनन्द की घटाएँ उमड़ कर नहीं आईं।) पुरवा हवा के चलने पर प्रायः आकाश में वादल घिर आते हैं, यहाँ कवि ने इसी सत्य को अपनाया है। आगे यशोधरा कहती है कि जिस प्रकार हमारे प्राण प्रियमिलन की आशा में अत्यन्त उत्सुक होकर व्यर्थ ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उसी प्रकार पुरवाई के चलने पर पपीहा स्वाँति नक्षत्र में घिरी हुई बदली की आशा करके जल पीने के लिए व्यर्थ ही अपने चंचु-पुट को खोलकर प्रतीक्षा से आतुर अपनी गर्दन को ऊपर किए हुए हैं। जिस भाँति मयूरों ने बदली के घिर आने की आशा में अपनी पुछार को उठाकर नाचना चाहा, किन्तु अन्त में निराशा होकर उसे अपनी पूँछ गिरा लेनी पड़ी और मुख तक आई हुई कूक मुख में ही वनी रही, बाहर नहीं निकल सकी, उसी प्रकार मेरा मन भी प्रियतम के आगमन की बात सुनकर में डूबकर थिरकने और गुनगुनाने की तैयारी कर चुका था, किन्तु अब उनके न आने पर वह सहम कर चुप हो गया है। अरे भाई ! प्रकृति (अन्तः और वाह्य दोनों) ही विकृत होकर जब वियम-विरुद्ध कार्य करने लगी है तब फिर किसका वश चल सकता है ? किन्तु फिर भी हमें पूर्णतया निराश नहीं होना चाहिए

क्योंकि प्रकृति के ऊपर भी एक ऐसे परम पुरुष की स्थिति है, जो न्याय करने वाला है, इसलिए आशा रखनी ही चाहिए। प्रकृति और पुरुष के संयुक्त प्रयत्न से संचालित होने वाले इस संसार में अन्याय नहीं हो सकेगा, आशा पूर्ण होकर ही रहेगी। हवा के साथ बादल भी आएँगे, चातक और मोर प्रसन्न होंगे। मेरे प्रियतम भी आएँगे और मैं भी आनन्द से झूम उठूँगी। अतएव हे जगत के प्राणियो! मैं एक बार ही नहीं तीन बार कहती हूँ कि हमें सदैव आशा रखनी चाहिए।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने अन्तःप्रकृति और बाह्यप्रकृति का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है। पुरवाई के साथ बादल घिर आने की बात कहकर कवि ने प्रकृति के प्रति सूक्ष्म निरीक्षण का भी परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त उसने पहले निराशा की अभिव्यक्ति करके बाद में आशा का मधुर सञ्चार किया है। यशोधरा यहाँ निराशा-आशा के झूले में झूलती हुई दिखाई गई है।

(२) इसमें कविने अन्योक्ति पद्धति में यशोधरा की मनोदशा का वर्णन किया है। साथ ही दार्शनिक पुट भी इसमें मिल जाता है।